"एक जादू उजाले का था, एक अंधेरे का, जो धीरे-धीरे मीना के गिर्द लिपट गया। अविनाश, जो पूरे चप्पा मीना से लम्बा हो गया था, अंधेरे के जादू में उसे सपने 'बांके सिपहिया' जैसा लगता, और उजाले के जादू में वही अविनाश ढाई-तीन महीने की आयु का हो जाता, जिसे मीना ने छोटी-सी मां की भांति अपनी गोदी में खिलाया था।"

—इसी पुस्तक में से

अमृता प्रीतम

तीसरी औरत



कहानियां

अनुक्रम

आत्म-साक्षात्कार

?—मेरी जान की दुश्मन !

०—जान की दुश्मन शायद हूं, पर ईमान की दुश्मन नहीं।

?—तुम्हें याद है, मुश्किल के वक्त मैं तुम्हें आवाज़ दिया करती थी, —मेरे पास आ जाओ ! मेरी दोस्त ! तुम्हें दुनिया नहीं झेलेगी, सिर्फ मैं तुम्हें झेल सकती हूँ।

०—सब याद है मेरी है दोस्त ! तुम ही मेरे बदनके कांटे चुन तीरही हो।

?—फिर आज मुझसे वह बातें करोगी जो तुमने पहले किसी से नहीं कीं ?

०—सारी उम्र बात ही तो करती रही हूँ, जो भी मन की तहों में घटित हुआ, वही कलम के हवाले करके दुनिया में वध कर दिया। तुमसे तो क्या छुपाना है, मैंने तो दुनिया से भी कुछ नहीं छुपाया।

?—जिसके हाथ में भी कलम होती है, वह दुनिया का एक बहुत बड़ा ऐक्टर होता है।

०—क्या मतलब ?

?—यही कि तुमने जब भी अपनी बात की, अपना नाम कुछ और रख लिया। तुमने जब नावल लिखा था 'एक थी अनीता', स चचताना तुमने अपना नाम अनीता नहीं रख लिया था ? फिर तुमने नावल लिखा 'नागमणि' तो उसमें अपना नाम अलका नहीं रख लिया।

०—हां, रखा था, पर एक लेखक का कर्म एक ऐक्टर के कर्म से उल्ट होता है।

?—वह किस तरह ?

०—एक ऐक्टर हजारों को समेटकर अपने चेहरे में ले आता है, और एक लेखक अपने चेहरे को हजारों में बाँट देता है ।

?—चलो, ऐसे ही सही। फिर यह बताओ कि 'एक थी अनीता' में जो अनीता तुम्हारा नाम था तो इकबाल और सागर किनके नाम थे?

०—पहले यह बताओ कि तुम कितने सवाल पूछोगी ?

?—मैं चाहे एक सौ एक सवाल पूँछूं !

०—अच्छा, फिर मैं सौ सवालों के जवाब दे दूंगी, पर एक का नहीं।

?—क्यों ?

०—जो कुछ पास था, सब दुनिया को दे दिया। कुछ तो मेरे अपने लिए रहने दो।

?—लेखक की किस्मत में शायद अपने लिए कुछ नहीं होता ।

०—शायद तुम ठीक कहती हो ! अगर कुछ अपने लिए रखना होगा, तो मैं वह किरदार क्यों लिखती ? लिखने के बाद तो कुछ भी अपना नहीं रहता—कभी तो लगता है, दर्द भी अपना नहीं रहता।

?—तुम्हारे खयाल में तुम्हारा यह नावल सबसे अच्छा है ?

०—नहीं, उससे अच्छे और नावल हैं जो मैंने अपने बारे में नहीं लिखे। मसलन 'पिंजरा', 'यात्री','जलावतन','जेबकतरे', 'आक के पत्ते'।

?—तुम्हें मालूम है, मैंने तुम्हें अपनी जान की दुश्मन क्यों कहा था ? तुमने लिखने की लगन में न दिन देखा न रात। कभी सारी-सारी रात लिखती रही, न नींद न भूख, कभी सारा-सारा दिन चाय पी-पीकर और सिगरेट पी-पीकर गुजार दिया।

०—इसीलिए मैंने कहा था, मैं जान की दुश्मन हूँ पर ईमान की दुश्मन नहीं। यह कलम मेरा ईमान है।

?—तुम कमल को ईमान की हद तक क्यों ले गयीं ?

०—मेरे खयाल में ईमान की हद से कुछ भी इधर नहीं होता। गलत सिर्फ वह कुछ होता है जो ईमान की हद तक नहीं पहुँचता। मसलन मुहब्बत, वह मुहब्बत के सिवा कुछ भी हो सकती है, पर

मुहब्बत नहीं, अगर वह ईमान की हद से इधर रह जाए। दुनिया की राजनीति इसीलिए दुनिया का कुछ नहीं बना सकी क्योंकि वह कभी भी ईमान की हद तक नहीं पहुँची।

?—तुमने दुनिया के दर्द को किस हद तक अपना समझा ?

०—तुम मानोगी, अगर मैं कहूँ कि उस हद तक जिस हद तक अपने निजी दर्द को ?

?—मैं तुम्हारी बात को सच से इधर नहीं समझ सकती, सच की सीमा तक समझती हूँ।

०—मेहरबानी !

?—पर तुमने अभी कहा था कि लिखने का कर्म ऐसा है जिसमें कुछ भी अपना नहीं रहता। और कभी यह भी लगता है कि अपना दर्द भी अपना नहीं रहता।

०—हाँ, कहा था।

?—सो, एक तरफ तुमने अपने दर्द से भी सुर्खरू होना चाहा, और दूसरी तरफ एक दम बेगानी दुनिया के दर्द को भी अपना बना लिया। क्या यह विरोधी कर्म नहीं ?

०—नहीं, दिल दर्द के काबिल हो तो वह अपने और बेगाने दर्द में लकीर नहीं खींच सकता। मैंने सिर्फ लिखने के कर्म को दर्द से सुर्खरू होना कहा था।

?—पर सुर्खरू होने पर तो वास्ता खत्म हो जाता है ?

०—नहीं, वास्ता खत्म नहीं होता, और भी ठीक सूरत में नजर आता है। जिस तरह कैनवस पर रंगों में उभरती हुई सूरतें थोड़ी सी दूरी पर खड़े होकर देखें तो ठीक नजर आती है। दर्द हमें किरदार बनाता है, पर लेखन का कर्म हमें दर्शक बनाता है। यह अपने आप से कुछ फासले पर खड़े होकर स्वयं को देखने का अमल है। और यही वह सुर्खरू होने की घड़ी होती है, जब हम किरदार को दर्शक बन कर देखते हैं, चाहे आप ही किरदार होते हैं और आप ही दर्शक !

?—फिर क्या हर्ज था जो दुनिया के दर्द को तुम सिर्फ एक दर्शक की तरह देखती रहतीं, तुम अपनी नींद सोतीं, अपनी जाग जागतीं, उसका किरदार न बनतीं।

०—यह किसी भी और इन्सान के लिए सम्भव हो सकता है, पर लेखक के लिए नहीं। यह लेखक की तकदीर होती है कि उसे सिर्फ अपनी नहीं, बेगानी मौत भी मरना होता है।

?—तुम्हें कभी इस तकदीर से शिकवा नहीं हुआ ?

०—अगर कभी शिकवा हुआ है तो इस बात से कि इस तकदीर के काबिल होने के लिए एक उम्र बहुत थोड़ी है।

?—हैरान हूँ! एक तरफ तुम्हारा यह जिगरा है, और दूसरी तरफ यह संकोच कि तुम मेरे हर सवाल का जवाब दे सकती हो, पर एक सवाल का नहीं ?

०—इसमें संकोच का सवाल नहीं।

?—फिर क्यों नहीं बता सकती हो कि तुम्हारे नावल में जो अनीता तुम थीं तो सागर और इकबाल कौन थे ?

०—तुमने नावल पढ़ा है, तुम्हें मालूम है कि उसमें अनीता भी सागर को नहीं जान सकी। वह सिर्फ इकबाल को जान सकी।

?—इकबाल का हकीकत में नाम क्या है?

०—इमरोज !

?—तुमने इमरोज को और नावलों में भी किरदार बनाया है ?

०—हाँ, सबसे पहले 'एक सवाल' नावल में जगदीप कह कर, फिर 'बंद दरवाजा' नावल में सुमेर कहकर, फिर 'एक थी अनीता' में इकबाल कहकर, फिर 'नागमणि' में कुमार का नाम देकर। लो, अब मैंने तुम्हारे इस सवाल का जवाब भी दिया है।

?—हाँ, तकरीबन, पर तुम्हारी जिन्दगी में सागर की भी कोई अहमियत रही होगी कि तुम्हें वह एक पात्र के रूप में रचना पड़ा ?

०—अहमियत से इन्कार नहीं, न उन नज्मों से जो मैंने उसकी मुहब्बत में लिखी, पर मैं उसे जान नहीं सकी। उसका सिर्फ मेरे तसव्वुर

से वास्ता था। नहीं, असल में वह मेरे तसव्वुर का मेरे तसव्वुर से वास्ता था। और जो कहानी तसव्वुर से शुरू होकर तसव्वुर पर खतम हो जाए, वह किसी के नाम की नहीं अपने ही ख्यालों की करामात होती है।

?—अब मैं समझी हूँ, तुमने क्यों कहा था कि मैं एक सवाल का जवाब नहीं दूंगी। तुमने ठीक कहा था, कोई अपने ही खयालों की करामात को कैसे कहे। अच्छा, यह बताओ—एक बार तुमने अपने बारे में कहा था कि तुम्हें अति का प्यार मिला है और अति की नफरत। इसका क्या मतलब है?

०—इसका अर्थ बहुत सीधा है। मुझे अपने पाठकों से अति का प्यार मिला है, और मुझे अपनी जबान के अपने समकालीन लेखकों से नफरत भी मिली है।

?—अगर मैं यह पूंछू कि तुम्हें जिन्दगी में कोई पछतावा है?

०—सिर्फ एक पछतावा है कि मेरे समकालीन लेखक मेरे वाकिफ न होते। लेखक के कैरियर का मैंने जो 'एंटीक्लाइमेक्स' देखा है, वह बहुत दुखदायी है।

?—अगर मैं यह कहूँ कि यह तुम्हारे 'आइडियलिज्म' का कसूर है, तुमने इस कैरियर से इतना 'आइडियलिज्म' क्यों जोड़ा था?

०—नहीं, तुम यह नहीं कह सकती क्योंकि यह मेरे विश्वास की बात है। मैं अब भी कहती हूँ कि आज जब हमारा सारा देश कैरेक्टर के क्राइसिस से गुजर रहा है, लेखक को कोई हक नहीं कि वह भी क्राइसिस में से गुजरे, पर वह गुजर रहा है। जिस तरह आज राजनीति के क्षेत्र में किसी के सामने अपने देश का तसव्वुर नहीं, हर एक का प्रयत्न सिर्फ अपनी स्थापना के लिए है, उसी तरह लेखक के सामने भी सिर्फ अपनी स्थापना का सपना है। देखो, सपने कहाँ तक सिकुड़ गये!

?—अपनी जान की दुश्मन! तुम्हारा जी करता है कि वह भी अपनी जान के दुश्मन बन जाए।

○—हाँ, जान के दुश्मन, पर ईमान के दुश्मन नहीं। ऐसे बहुत थोड़े, पर कई होंगे, जरूर होंगे। तुमने यूं ही इस तरह का लफ्ज इस्तेमाल किया है। असल में जान की दोस्ती भी यही होती है और ईमान की दोस्ती भी यहीं। देख लो, इसीलिए तुम मुझे जान की दुश्मन कह कर भी अपना दोस्त कहती हो…

?—हाँ, दोस्त! पर आज मैंने तुमसे एक सवाल जबर्दस्ती पूछा है नाराज न होना।

○—नहीं, खुश हूं कि तुमने पूछा है क्योंकि तुम इसी तरह लिखोगे। जिस तरह मैंने बताया है, नहीं तो, कभी-कभी इण्टरव्यू देकर पछता जाती हूँ—इन्टरव्यू लेने वाले बाद में मेरे ही लफ्जों को तोड़-मरोड़ कर मेरी मर्जी के नहीं, अपनी मर्जी के अर्थ निकाल लेते हैं।

—अमृता प्रीतम

तीसरी औरत

अर्थियां घरों से वाहर जाती हैं, पर जव मीना अपने पीहर आई
वको लगा—जैसे एक अर्थी घर में आ गई हो।

सरकारी मुहरें लगा हुआ एक खत मीना के कफ़न की तरह था।
द्यपि उसमें मीना के मरने की खवर नहीं थी, देश की सीमा पर उसके
गांके सिपहिया' के मरने की खवर थी, फिर भी यह खत मीना के
फ़न के समान था।

कई वातें औरत सहज ही जानती हैं। यह भी उन्हीं में से एक सच
ात थी कि इस देश में मर्द एक वार मरता है, पर उसकी मृत्यु के वाद
सकी औरत जितने समय जीवित रहती है, न जाने कितनी वार मरती
।

सो जव मीना अर्थी की भांति पीहर आई, घर की गूंगी दीवारें
ी त्राहि-त्राहि करने लगीं।

जव ईश्वर मनुष्य की जीभ काट देता है, वह कुछ वोल नहीं
कता मीना के माता-पिता जैसे गूंगे होकर रह गए।

घर खुला था। घर के जीवों के पास शुरू से ही अपनी-अपनी छत
ी और अपनी-अपनी दीवारें। छोटे से छोटे वच्चे का भी घर में उसके
ाम का हिस्सा था, सो मीना जिस समय आई, सीधी अपने कमरे में
स तरह चली गई जैसे कभी स्कूल या कालिज से आकर जाया करती
ी।

पर घर के कमरों के दरवाजे जो शुरू में साधारण तौर पर खुलते
ौर साधारण तौर पर वन्द होते थे, पिछले वीस वरस से शापित थे।
व वह विवाह या तलाक, जन्म या मृत्यु जैसी घटनाओं के हाथों से

खुलते और बन्द होते थे।

बूढ़े माता-पिता—कभी खुश्क आंखों से होनी को देखते थे, कभी गीली आंखों से।

आज से बीस बरस पहले जब मीना की बड़ी बहन का विवाह हुआ था, उसका कमरा विवाह की घटना ने अपने हाथों से बन्द किया था। पर दो बरस बाद जब वह अपने पीहर बच्चे के जन्म के अवसर पर आई थी, बच्चे के जन्म ने अपने हाथ से उस कमरे का दरवाजा खोला था। और फिर जब वह चालीसे के अन्दर दुधमुंहे बच्चे को बिलखता छोड़ कर मर गई, तो मृत्यु ने अपने हाथ से कमरे का दरवाजा बन्द कर दिया नवजात बालक को पहले उसके दहसाल वाले ले गए थे, पर जब उस नन्हें बालक की संभाल कठिन हो गई तो उन्होंने बालक को ननिहाल भेज दिया। और होनी ने, उस बालक के नन्हें-नन्हें हाथों से, वह कमरा फिर खुलवा दिया था।

इसी तरह मीना का भाई आज से बारह बरस पहले जब यूनीवर्सिटी के होटल में रहने के लिए गया तो उसका जो कमरा साधारण घड़ियों ने बन्द किया था, वह पांच बरस बाद, होनी ने अपने हाथों से खोला। वह यूनीवर्सिटी की एक-दूसरे मजहब की लड़की को, उसके माता-पिता की चोरी से, व्याह कर घर ले आया था। कमरा खुल गया, रेशमी पर्दों में लपेटा गया, और उसमें से चावलों की देग की भांति और मांस की पकती हुई हांडी की भांति, जवानी की चुहलों की खुशबू आने लगी। पर फिर मुश्किल से कोई एक बरस बीता था कि अचानक हुए विवाह की भांति, अचानक हुए तलाक ने, उस कमरे को दरवाजा बन्द कर दिया।

और जब—आज से तीन बरस पहले, मीना के विवाह पर उसका जो कमरा बन्द दिया था, उसके रंडापे ने वह अपने हाथों से खोल दिया।

इस कमरे से मीना डोली की तरह गई थी, अर्थी के समान आई।

बूढ़े माता-पिता, उन दर्शकों के समान थे जिन्हें जिन्दगी ने यह

त्र कुछ देखने के लिए, बांध-बूंध कर बिछा दिया हो।

मीना का भाई अब मर्चेन्ट नेवी में था और दो बरस से देश के बाहर था। और जो बहन मर गई थी, उसका पुत्र, जो अब अट्ठारह बरस का था, पिछले दो बरस से दूर शहर में कालिज में पढ़ रहा था और होटल में रहता था। और घर के कमरे क्या खुले हुए, क्या बन्द। मीना को देखकर त्राहि-त्राहि करने लगे।

और बूढ़े पिता के आंखों में, न जाने कुछ और देखने की शक्ति कम हो गई थी, इसलिए, मोतियाबिन्द उतर आया।

सरकारी मुहरें लगा हुआ खत, जो एक दिन मीना के कफ़न की तरह आया था, फिर भी आया, और फिर भी। ऐसे—जैसे मकान पर कुछ फूल आ जाते हों। लिखा हुआ था, सरकार, जंगी विधवाओं को मदद देना चाहती है, इसलिए उन्हें घर बनाने के लिए जमीन देगी, और साथ ही कार-रोजगार। कार-रोजगार के सिलसिले में सरकार ने उनकी मर्जी पूछी थी—कि वह चाहें तो छोटे उद्योग के लिए रुपया ले सकती थीं, या फौजी स्कूलों में नौकरियां ले सकती थीं।

पर सरकारी मुहरें लगे ये खत जो अर्थी के फूलों के समान थे, मीना ने हाथों में लिए और मसल दिए। उसके धुर-अन्दर एक हिस्सा इस तरह मर गया था कि अब उसे किसी फूल की खुशबू नहीं आती थी। वह—क्या दिन, और क्या रात-खाट पर एक लाश की तरह पड़ी रहती।

मीना का भाई देश से दूर था, चार दिन के लिए भी नहीं आ सकता था, पर बहन का पुत्र अविनाश शहर के होटल से घर आ गया। अविनाश ने जिन्दगी में मां नहीं देखी थी, और शुरू जन्म से लेकर अपने साथ कोई खेलने वाला नहीं देखा था, और उसने उन सब की जगह सिर्फ मीना को देखा था। वह जब दौड़कर मीना के पास आया, मीना उसे गले से लगा कर पहली बार रोका हुआ रोना रोई।

शायद उसे गले से लगाकर नहीं, उसके गले से लग कर।

आज से तीन बरस पहले अविनाश लड़का-सा हुआ करता था—

अवि, जिसे मीना ने गोदी में उठा-उठा कर बड़ा किया था, और अब वह मीना से भी पूरे एक चप्पा लम्बा मर्द हो गया था।

मां जो खाने की थाली परोसती थी, रोज़ बेकार जाती थी। जब अविनाश हाथ में लेकर मीना के पास लाया और बोला, "उठ मीनू ! खाना खाएं !" तो मीना की भूख पहली बार जागी और उसने अविनाश के साथ पहली बार जी भर कर खाना खाया।

मीना की भूख के जगने वाली यह रोटी की गंध नहीं थी, वह अविनाश के मुंह से निकली 'मीनू' शब्द की गंध थी।

मीना, जिन्दगी में, सबके लिए या मीना थी या मीना जी, पर अविनाश के लिए शुरू में से ही 'मीनू' थी।—और या फिर अपने 'बांके सिपहिया' के लिए जिन्दगी में 'मीनू' बनी थी।

जो मीना को मीना कह कर पुकारते थे वह सदा उसे उसकी आयु से छोटा रखते थे, और जो उसे 'मीना जी' कहते थे वह सदा उसे आयु से बड़कर देते थे। यह सिर्फ अविनाश ही था, चाहे वह उससे दस बरस छोटा था, पर जब उसने तोतली बोली में उसे मीनू कहा था—तब भी उसे अपना आड़ो बना लिया था—और जब कुछ बड़ा हुआ तब उसने उससे स्कूल के सवाल समझते समय उसे 'मीनू' कहा था, तब भी उसका आड़ो होकर खड़ा हो गया था।

फिर जब मीना का विवाह हुआ—उसने अपने 'बांके सिपहिया' से एक ही बात कही थी कि वह उसे मीनू कहकर बुलाया करे, और वह उसे अपने आखिरी वक्त तक मीनू कहता रहा।

और उसकी मृत्यु से 'मीनू' ही तो मरी थी। बूढ़े कांपते हाथों उसका सिर सहलाते हुए माता-पिता की बेटी मीना अभी भी जीवित थी, और परिचितों, जानकारों और सरकारी सहायता देने वाले सब की 'मीना जी' जीवित थी—पर जो आड़ी मीना पुकारने वाला... उसकी मृत्यु से 'मीनू' मर गई थी।

अविनाश ने जब उसे 'मीनू' कहकर पुकारा, उसने एक बार ... पर उसके होंठों पर अपनी हथेली रख दी, पर फिर हाथ ...

ा—अपने कानों से एक बार फिर यह शब्द सुनने के लिए—शायद ग्रु के अन्तिम सांस की तरह।

और फिर अविनाश से कुछ नहीं कहा। और शून्य में लटके हुए शब्द को देखती रह गई।

कई बातें औरत सहज ही जानती हैं—और यह बात भी उन्हीं से एक थी कि इस शब्द का अब 'मीना' की जिन्दगी से कोई सम्बन्ध ीं रह गया था—और इस शब्द को अब वह हाथों से कभी नहीं एगी, पर वह फटी-फटी आंखों से रोज इसे दूर से देखने लगी।

अविनाश उसके सामने खाना लाकर रख देता, वह खा लेती। विनाश उसके सामने कैरम बिछा कर बैठ जाता, वह खेलने लगती। विनाश उसे घर की पिछली दीवार से लगे हुए बगीचे में ले जाता, ह पेड़ों की छाया में छाया की तरह घूमती रहती।

एक जादू उजाले का था, एक अंधेरे का, जो धीरे-धीरे मीना के र्द लिपट गया। अविनाश, जो पूरे एक चप्पा मीना से लम्बा हो ाय था, अंधेरे के जादू में उसे अपने 'बांके सिपहिया' जैसा लगता, ौर उजाले के जादू में वही अविनाश ढाई-तीन महीने की आयु का हो ाता, जिसे मीना ने छोटी-सी मां की भांति अपनी गोदी में खिलाया था।

मर्द मर जाये तो औरत के चाहे सारे अंग जीवित रहते हैं, उसकी ोख जरूर मर जाती है—और मीना को अपनी मरी हुई कोख की दुर्गन्ध नाक में चढ़ती मालूम हुई।

और उसके मन में एक हसरत उत्पन्न हुई—अगर उसने 'बांके सिपहिया' को अपनी कोख में संभाल लिया होता तो उसका एक टुकड़ा दुनिया में जीता रह जाता—और खोया हुआ पल मीना के शरीर में ीखें मारने लगा।

और फिर एक दिन वह समय था जब अंधेरा और उजाला एक दूसरे से मिलते हैं। मीना अपने कमरे में खाट पर लेटी हुई अविनाश के चेहरे की ओर एकटक देखने लगी।

इस समय अविनाश के चेहरे में दो चेहरे मिले हुए थे—एक मीना के पति का चेहरा, और एक उस पति से होने वाले बच्चे का। मीना जानती थी—एक अब इस दुनिया में नहीं है और दूसरा अब इस दुनिया में आएगा नहीं। पर वह हैरान, देखे जा रही थी कि सामने यह दो साये से क्यों दिखाई दे रहे हैं।

एक चेतन अवस्था भी थी—कि सामने कोई साया नहीं है, एक अब के जवान-जहान अविनाश का चेहरा है, और एक बिल्कुल नन्हें से बालक अविनाश की याद—और जिससे उसका अट्ठारह बरस का रिश्ता है।

पर एक अचेतनता की दशा भी थी—कि यह जो सामने दिखाई दे रहा है सिर्फ एक मर्द है, और वह स्वयं सिर्फ एक औरत, जिसकी कोख उस मर्द को और उसके शाश्वत अस्तित्व को चीख कर मांग रही है।

उजाला और अंधेरा जैसे एक दूसरे में घुल जाते हैं, मीना के मन की दशाएं भी एक दूसरे में घुल गईं—और उसको—एक औरत को—दोनों बांहों ने आगे होकर जब एक मर्द की दोनों बांहों को थाम लिया—मांस को मांस की एक तेज महक आई।

एक औरत के कपड़े और एक मर्द के कपड़े कांप कर खाट से नीचे गिर गये, और खाट के पांवों के पास सिर झुका कर गठरी की तरह बैठ गये।

यह एक शान्त—आत्मा को आत्मा के स्पर्श का पल नहीं था, यह एक प्रलय समान घड़ी थी जिसमें एक औरत मन के संस्कारों पर पांव रख कर अनन्य को खोज रही थी, और एक मर्द बहुत घबरा कर अपनी आयु से अधिक बड़ा हो रहा था।

प्रलय की घड़ी बीत गई—तो मीना एक नई मौत मर गई।

सिर्फ मीना नहीं, 'मीनू' भी।

सारी रात खाट पर जैसे दो औरतें थीं—और दोनों ने एक दूसरे को दोष देते हुए, एक दूसरे को मार दिया था।

और सवेरे के समय जो औरत कमरे से बाहर निकली, वह एक ारी औरत थी। और उसने मसल कर फेंके हुए सरकारी कागजों जल्दी से दस्तखत किये, और लिखा कि वह जल्दी से जल्दी किसी के पहाड़ी इलाके के स्कूल में नौकरी करना चाहती है।

और थोड़े से दिनों के बाद, उस घर का एक कमरा जो एक ना ने खोला था, एक घटना ने फिर बन्द कर दिया। मीना दूर ाड़ी इलाके के एक स्कूल में चली गई—शायद सदा के लिए।

□ □ □

अपने-अपने छेद

कोई नहीं जानता—सिर्फ ईश्वर और डाक्टर राव जानते थे कि शीना ने अपनी छाती में एक छेद छुपाया हुआ है।

जिस दिन डाक्टर राव ने वीरेन्द्र के ऐक्स-रे सामने रख कर उसकी पत्नी को अकेले में बुलाकर कहा था, "मैं कह नहीं सकता वीरेन्द्र की जिन्दगी और कितने दिन बाकी है, हो सकता है कुछ महीने और बीत जाएं, पर हो सकता है सिर्फ कुछ दिन ही···दिल के चार हिस्सों में जो कनेक्टिंग वाल्वज होते हैं, उनमें से एक में एक छेद है जो हफ्ते पहले के ऐक्स-रे में मुनाके-जैसा बारीक था, पर इस बार के ऐक्स-रे में विश्वास के नाखन बड़ा हो गया है···" और डाक्टर राव ने बड़ी कारोबारी आवाज में कहा था, "अगर यह छेद उसी तरह बारीक रहता तो उसे थकान की शिकायत तो रहती ही, पर हो सकता था कि वह कई साल जीता रहता, पर ···।"

डाक्टर को 'पर' के आगे कुछ कहने की आवश्यकता नहीं थी। शीना ने जान लिया कि छेद बड़ा होता जा रहा है, और इस छेद में वीरेन्द्र के सांस भिरते जा रहे हैं, और उसने जब डाक्टर से कहा, "अगर किस्मत ऐसी ही है, तो आप एक काम कीजिए, उसे इसी तरह गुम रहने दीजिए, जैसे वह कई महीनों से है। आप वीरेन्द्र को कुछ न बताइये। अब चाहे कुछ महीने बाकी हैं, या कुछ ही दिन, मैं उनके आखिरी सांस तक उनके साथ इस तरह जीना चाहती हूं जैसे हमें मिल कर हमेशा तक जीना हो···" तो यह सुनकर डाक्टर राव ने जान लिया था कि शीना ने अपनी छाती में यह छेद छिपा लिया है, और उसे दुनिया का कोई ऐक्स-रे नहीं देख सकता।

शीना ने यह तो जान लिया कि मौत उसके घर का पता पूछ रही है, पर सोचा अभी जितने दिन उसे घर नहीं मिलता और अभी जितने दिन घर का दरवाजा नहीं खड़खड़ाती, वह उतने दिन अपने घर को इस तरह सजाना और वीरेन्द्र के साथ जीना चाहती है जैसे एक मर्द और एक औरत ने दुनिया में पहले घर बसाया हो।

वीरेन्द्र को बिलकुल मालूम नहीं था कि मौत जल्दी मचा रही है, तब भी, न जाने उसके जी में क्या आया, उसने सारे जोड़-तोड़ कर, मेरे लिए यह मकान ख़रीदा— शीना सोचती रही, "मुश्किल से पांच बरस की नौकरी के बचे हुए कुछ पैसे थे, और कुछ उसने अपने माता-पिता की मदद लेकर और कुछ दफ्तर की, यह छोटा-सा घर खरीद लिया—" और शीना को छोटी-छोटी बातें याद आईं "वीरेन्द्र को टसरी रंग के पर्दे पसन्द थे, पर उनके खरीदने के लिए पैसे नहीं बचे—पर चाहे सिर्फ दो कमरे का ही है, पर उसमें बीस फुटका जो बगीचा है, उसमें वह कलकतिया घास लगवाना चाहता था, उसमें वह दो रंगों वाली बुगनबेलिया की बेल लगाना चाहता था, उसके एक कोने में वह रात-रानी, और एक कोने में में चम्पा और सूरजमुखी के फूल भी।"

और शीना ने ट्रंक में पड़ी हुई सोने की दो चूड़ियां बेच कर टसरी रेशम के पर्दे ख़रीद लिए। वीरेन्द्र के पूछने पर शीना ने कहा कि मकान की चट के लिए मां ने कुछ नहीं भेजा था, इसीलिए किसी आते-जाते के हाथ उन्होंने पांच-सौ रुपये भेजे हैं।

शीना सचमुच मन की उस जगह पर खड़ी हो गई जहां कई झूठ भी मन्त्र के सामने पवित्र होते हैं।

पांच महीने पहले वीरेन्द्र को, बैडमिन्टन खेलते हुए, अचानक सांस उखड़ता था और उसके बाद वह रोज शाम के समय अजीब थकान महसूस करने लगा था कहीं कोई पीड़ा नहीं थी, पर जैसे हड्डियों में से रोग कुछ झर रहा हो—और अब पिछले महीने से वीरेन्द्र ने दफ्तर से भी छुट्टी ले रखी थी।

शीना नर्सरी से एक पौधा रोज़ खरीद कर ले आती, और रोज़

सवेरे अपने छोटे-से बगीचे में वह वीरेन्द्र के हाथों से पेड़ लगवाती जैसे वीरेन्द्र का छोटा-सा अंश रोज धरती में बीज रही हो।

शीना का बहुत जी करता—वीरेन्द्र का एक छोटा-सा अंश वह अपनी कोख में भी बीज ले—पर अब बहुत देर हो चुकी थी। अब तो डाक्टर ने कहा था कि अच्छा होता अगर वीरेन्द्र ने ब्याह न किया होता—ऐसे मरीज के लिए शरीर की उत्तेजना मृत्यु का झटका भी हो सकती है—"अगर मालूम होता" शीना के मन में हसरत आई पर अब किसी हसरत में भी खो जाने योग्य समय नहीं था, अब समय केवल वीरेन्द्र के मुंह की ओर ताकते रहने का था—शीना जागते हुए वीरेन्द्र को भी ताकती रहती, और सोए हुए वीरेन्द्र को भी।

शीना के घर से सटा हुआ घर बहुत समय से खाली था और उसकी गैर-आबादी से कभी-कभी शीना को रात के समय डर लगता था। वह इन दिनों अचानक बस गया—एक औरत, एक मर्द और दो बच्चे उसकी आबादी बन गए।—शीना को दीवार के पार से आने वाली आवाजें अच्छी लगीं, इनमें बच्चों की किलकारियां भी थीं और हठ से भरी हुई चीखें भी, मर्द और औरत की एक दूसरे को पुकारने की आवाजें भी और एक दूसरे से किचकिच करने की आवाजें भी और शीना आबादी की इन इमारतों को देखते हुए मुश्किल से मुस्कराई ही थी कि उसे लगा—उस घर की बेआबादी अब रींगते रींगते दीवार के ऊपर से उतरते-फिसलते—इस तरफ—उसके घर की तरफ—उसके घर की तरफ—आ रही है।

शाम का समय था जब शीना के दरवाजे पर खड़का हुआ। शीना ने अपने पिता और भाई तक को भी अपने हाल की भनक न पड़ने दी और वह किसीका हाल-चाल पूछने के लिए आना नहीं चाहती थी। वह नहीं चाहती थी—वीरेन्द्र के मरने से पहले कोई उसे मरने की हालत में देखे। इसलिए इस समय किसी और का आना सम्भव नहीं था—सिवाय डाक्टर राव के, जो पिछले दिनों में एक बार वीरेन्द्र को इधर से आते जाते देख गया था।

पर उसका दूसरी बार आना वीरेन्द्र के मन में सन्देह पैदा कर सकता था, इसलिए शीना को दरवाजे का खड़का अच्छा नहीं लगा। पर झिझक कर दरवाज़ा खोलते हुए उसने देखा—आने वाला डाक्टर राव नहीं था, पड़ोस के अभी हाल में आबाद हुए मकान की औरत थी।

औरत कुछ संकोच में थी, बोली, "आपके घर में शायद टेलीफोन है, मैं फोन कर लूं? मैं आपके पड़ोस से मिसेज़ कपूर हूं।"

शीना ने वीरेन्द्र के कमरे का दरवाज़ा भेड़ते हुए सिर्फ इतना कहा, "वह सो रहे हैं, मिसेज़ कपूर! आप फोन कर लीजिए, लेकिन ज़रा धीरे बोलियेगा, वह जाग न जाएं।"

साधारण-सा फोन था—औरत ने अपने पति के दफ्तर का नम्बर मिलाया, पूछा कि वह दफ्तर में हैं या चले गए। लेकिन फोन करके वह ऐसी निढ़ाल-सी हो गई कि शीना ने उसे कुर्सी पर बिठाते हुए पानी के लिए भी पूछा, और यह भी कि शायद उसके घर में कोई घबराने वाली बात हो गई है और अगर वह कुछ मदद कर सके।

औरत ढली हुई आयु की नहीं थी पर मुरझाई हुई-सी थी, वैसे अब भी अच्छी छब वाली थी—सिर्फ आयु से अधिक गम्भीर थी, कहने लगी, "नहीं, वैसे ही देर हो गई है, अभी तक वह घर नहीं आए हैं, सोचा दफ्तर से मालूम कर लूं।"

औरत के इन साधारण शब्दों की झिरियों से जो चिन्ता छन रही थी, वह साधारण नहीं थी। पर शीना ने इससे ज्यादा कुछ नहीं पूछा। पूछना ठीक नहीं समझा।

औरत चली गई। पर रात गए उसके घर से पहले मर्द के जोर-जोर से बोलने की, और फिर औरत के सुबक-सुबक कर रोने की आवाज आई, तो शीना को अपना शाम के समय का ख्याल ठीक लगा। औरत की उदासी शायद एक दिन की नहीं थी—इसके पीछे शायद बहुत-से दिन थे।

वीरेन्द्र की कमजोरी बढ़ती गई—वह थोड़ा-सा उठता, बगीचे तक जाता, या सिर्फ पास गुसलखाने तक, कि उसके माथे पर ठंडा पसीना

और मिसेज़ कपूर ने भरी हुई आँखों से कहा, "जब शाम होती है—मेरा आदमी घर नहीं आता—सोचती हूं—न जाने इस समय वह किसके पास होगा—उनका रास्ता देखते भी रोती हूं—और जब घर आ जाते हैं—तब उन्हें देख कर भी रोती हूं।"

शीना का मन भर आया—इसका पति जो न जाने किस-किस के पास जाता है—रात पड़ने पर घर तो लौट आता है—अपनी पत्नी के पास—पर मेरा पति जल्दी, बहुत जल्दी, वहां चला जाएगा जहां से वह कभी लौटेगा नहीं—और मेरे पास इन्तजार करने लायक भी कुछ नहीं होगा।

और शीना के चेहरे पर जब पिलायी फिर गई, मिसेज कपूर ने अपनत्व से पूछा, "शीना बहन! तुम्हारे पति बीमार हैं? मैं बहुत दिनों से देख रही हूं, वह दफ्तर नहीं जाते, कहीं भी बाहर नहीं जाते।" तो शीना का मन उमड़ आया, और जो मन का छेद उसने किसी को नहीं दिखाया था—मिसेज़ कपूज को दिखा दिया।

मिसेज़ कपूर ने कहा कुछ नहीं, पर उसके मन में एक ईर्ष्या-सी पैदा हुई—"यह कितनी भाग्यवान औरत है, इसका पति आखरी सांस तक इसका पति है, वह मर कर भी इसके लिए जीता रहेगा—यह उसकी एक-एक याद को जिएगी—उसके लगाए हुए पौधों पर जब फूल आएंगे, इसे हर पत्ती में और हर रंग में अपने पति की महक आएगी।"

और शीना, भरी हुई आंखों से, उठकर जाती हुई मिसेज़ कपूर की पीठ की ओर, देखती रही, "मुझसे तो इसका नसीब अच्छा है—जब उसका पति आता है वह उससे लड़ सकती है उसके आगे रो सकती है—पर मैं किससे लड़ूंगी—मैं किसके आगे रोऊंगी।"

और शीना के कानों में अपनी और वीरेन्द्र की वह आवाज भर गई—जब वीरेन्द्र बाहर से आता, उसके लिए फूल ले आता, कहा करता था, "ओ मेरी इकलौती बीवी! देख—" और शीना उसके कंधे पर सिर रखते हुए कहा करती थी, "मेरे इकलौते खाविन्द!

यह कहानी नहीं

पत्थर और चूना बहुत था, लेकिन अगर थोड़ी-सी जगह पर दीवार की तरह उभर कर खड़ा हो जाता, तो घर की दीवारें बन सकता था। पर बना नहीं। वह धरती पर फैल गया, सड़कों की तरह, और वह दोनों तमाम उम्र उन सड़कों पर चलते रहे।

सड़कें एक दूसरे के पहलू से भी फटती हैं, एक दूसरे के शरीर को को चीर कर भी भी गुजरती हैं, एक दूसरे से हाथ छुड़ा कर गुम भी हो जाती हैं, और एक दूसरे के गले से लग कर एक दूसरे में लीन हो जाती थीं। वह एक दूसरे से मिलते रहे, पर सिर्फ तब, जब कभी कभार उनके पैरों के नीचे बिछी हुई सड़कें एक दूसरे से आकर मिल जातीं थीं।

घड़ी पल के लिए शायद सड़कें भी चौंक कर रुक जाती थीं, और उनके पैर भी।

और तब शायद दोनों को उस घर का ध्यान आ जाता था जो बना नहीं था।

बन सकता था, फिर क्यों नहीं बना? वह दोनों हैरान से होकर पांवों के नीचे की ज़मीन को ऐसे देखते थे जैसे यह बात उस ज़मीन से पूछ रहे हों।

और फिर वह कितनी ही देर ज़मीन की ओर ऐसे देखने लगते मानो वह अपनी नज़र से ज़मीन में उस घर की नींवें खोद लेंगे।

और कई बार सचमुच वहां जादू का एक घर उभर कर खड़ा हो जाता और वह दोनों ऐसे सहज मन हो जाते मानो बरसों से उस घर में रह रहे हों।

यह उनकी भरपूर जवानी के दिनों की बात नहीं, अब की बात है,

शायद स का घर भी अब पास था।

पेड़ों-पत्तों में लिपटी हुई-सी एक काटेज के पास पहुंच कर गाड़ी खड़ी हो गई। अ भी उतरी, पर काटेज के भीतर जाते हुए एक पल के लिए बाहर केले के पेड़ के पास खड़ी हो गई। जी किया—अपने कांपते हुए हाथों को यहां बाहर केले के कांपते हुए पत्तों के बीच में रख दे। वह स के साथ भीतर काटेज में जा सकती थी, पर हाथों की वहां जरूरत नहीं थी।

मां ने शायद गाड़ी की आवाज सुन ली थी, बाहर आ गई। उन्होंने हमेशा की तरह अ का माथा चूमा। और कहा, "आओ, बेटी।"

इस बार अ बहुत दिनों बाद मां से मिली थी, पर मां ने उसके सिर पर हाथ फेरते हुए—जैसे सिर पर से बरसों का बोझ उतार दिया हो—और उसे भीतर ले जाकर बिठाते हुए उससे पूछा, "क्या पियोगी, बेटी ?

स भी अब तक भीतर आ गया था, मां से कहने लगा—पहले चाय बनाओ, फिर खाना।

अ ने देखा—ड्राइवर गाड़ी से उसका सूटकेस अन्दर ला रहा था। उसने स की ओर देखा, कहा—"बहुत थोड़ा वक्त है, मुश्किल से एयर-पोर्ट पहुंचूंगी।"

स ने ड्राइवर से कहा—"सवेरे जाकर परसों का टिकट ले आना।" और मां से कहा—"तुम कहती थीं कि मेरे कुछ दोस्तों को खाने पर बुलाना है, कल बुला लो।"

अ ने स की जेब की ओर देखा जिसमें उसका वापसी का टिकट पड़ा हुआ था, कहा—"पर यह टिकट बर्बाद जाएगा।"

मां रसोई की तरफ जाते हुए खड़ी हो गई, और अ के कंधे पर अपना हाथ रख कर कहने लगीं—"टिकट का क्या है, बेटी ! इतना कह रहा है, रुक जाओ।"

पर क्यों ? अ के मन में आया, पर कहा कुछ नहीं। कुर्सी से उठ कर कमरे के आगे बरामदे में जा कर खड़ी हो गई। सामने दूर तक

पाम के ऊंचे-ऊंचे पेड़ थे। समुद्र परे था। उसकी आवाज सुनाई दे रही थी, पर पेड़ दिखाई दे रहे थे। अ को लगा—सिर्फ आज का 'क्यों' नहीं, उसकी जिन्दगी के कितने ही 'क्यों' उसके मन के समुद्र के तट पर इन पाम के पेड़ों की तरह उगे हुए हैं, और उनके पत्ते अनेक वर्षों से हवा में कांप रहे हैं।

अ ने घर के मेहमान की तरह चाय पी, रात को खाना खाया, और घर का गुसलखाना पूछ कर रात को सोने के समय पहनने वाले कपड़े बदले। घर में एक लम्बी बैठक थी, ड्राइंग डाइनिंग, और दो और कमरे थे—एक स का, एक मां का। मां ने जिद करके अपना कमरा अ को दे दिया, और स्वयं बैठक में सो गईं।

अ सोने वाले कमरे में चली गई, पर कितनी ही देर झिझकी हुई सी खड़ी रही। सोचती रही—मैं बैठक में एक दो रातें मुसाफिरों की तरह ही रहती, ठीक था, यह कमरा मां का है, मां का ही रहना चाहिए था।

सोने वाले कमरे के पलंग में, पर्दों में, और अलमारी में एक घरेलू-सी बू-बास होती है, अ ने इस का एक घूंट-सा भरा। पर फिर अपना सांस रोक लिया मानो अपने ही सांसों से डर रही हो।

बराबर का कमरा स का था। कोई आवाज नहीं थी। घड़ी पहले स ने सिरदर्द की शिकायत की थी, नींद की गोली खाई थी, अब तक शायद सो गया था। पर बराबर वाले कमरों की भी अपनी एक बू-बास होती है, अ ने एक बार उसका भी एक घूंट पीना चाहा पर सांस रुका रहा।

फिर अ का ध्यान अलमारी के पास नीचे फर्श पर पड़े हुए अपने सूटकेस की ओर गया, और उसे हंसी-सी आ गई—वह देखो, मेरा सूट-केस, मुझे सारी रात मेरी मुसाफिरी की याद दिलाता रहेगा।

और वह सूटकेस की ओर देखते हुए, थकी हुई सी, तकिये पर सिर रख कर लेट गई।

न जाने कब नींद आ गई। सो कर जागी तो खासा दिन चढ़ा

हुआ था। बैठक में रात को होने वाली दावत की हलचल थी।

एक बार तो अ आंखें झपक कर रह गई—बैठक में सामने स खड़ा था—चारखाने का नीले रंग का तहमद पहने हुए। अ ने उसे कभी रात के सोने के समय के कपड़ों में नहीं देखा था। हमेशा दिन में देखा था।—किसी सड़क पर, सड़क के किनारे किसी कैफे में, होटल में, या किसी सरकारी मीटिंग में—उसकी यह पहचान बड़ी नई-सी लगी, आंखों में अटक-सी गई।

अ ने भी इस समय नाइट सूट पहना हुआ था, पर अ ने बैठक में आने से पहले उस पर ध्यान नहीं दिया था, अब ध्यान आया तो अपना आप ही अजीब लगने लगा—साधारण से असाधारण-सा होता हुआ।

बैठक में खड़ा हुआ स, अ को आते हुए देख कर कहने लगा—ये दो सोफे हैं, इन्हें लम्बाई के रुख रख लें? बीच में जगह खुली हो जाएगी।

अ ने सोफों को पकड़वाया, छोटी मेजों को उठा कर कुर्सियों के बीच में रखा। फिर मां ने चौके से आवाज दी तो अ ने चाय लाकर मेज पर रख दी।

चाय पी कर स ने उससे कहा—"चलो, जिन लोगों को बुलाना है, उनके घर जा कर कह आएं, और लौटते हुए कुछ फल लेते आएं।"

दोनों ने पुराने परिचित दोस्तों के घर जा कर दस्तक दी, सन्देशे दिए, रास्ते से चीजें खरीदीं, फिर वापस आकर दोपहर का खाना खाया, और फिर बैठक को फूलों से सजाने में लग गए।

दोनों ने रास्ते में साधारण बातें की थीं—फल कौन-कौन से लेने हैं? पान लेने हैं या नहीं? ड्रिंक्स के साथ के लिए कबाब कितने ले लें? फलां का घर रास्ते में पड़ता है, उसे भी बुला लें?—और यह सब बातें वह नहीं थीं जो सात बरस बाद मिलने वाले करते हैं।

अ को सवेरे दोस्तों के घर पर पहली दूसरी दस्तक देते समय ही सिर्फ थोड़ी-सी परेशानी महसूस हुई थी। वह भले ही स के दोस्त थे, पर एक लम्बे समय से अ को जानते थे, दरवाजा खोलने पर बाहर उसे स के साथ देखते तो हैरान से हो कह उठते—"आप!"

पर वह जब अकेले गाड़ी में बैठते, तो स हंस देता—देखा, कितना हैरान हो गया, उससे बोला भी नहीं जा रहा था।

और फिर एक दो बार के बाद दोस्तों की हैरानी भी उनकी साधारण बातों में शामिल हो गई। स की तरह अभी सहज मन से हंसने लगी।

शाम के समय स ने छाती में दर्द की शिकायत की। मां ने कटोरी में ब्रान्डी डाल दी, और अ से कहा—"लो बेटी! यह ब्रान्डी इसकी छाती पर मल दो।"

इस समय तक शायद इतना कुछ सहज हो चुका था, अ ने स की कमीज के ऊपर वाले बटन खोले, और हाथ से उस की छाती पर ब्रान्डी मलने लगी।

बाहर पाम के पेड़ों के पत्ते और केलों के पत्ते शायद अभी भी कांप रहे थे, पर अ के हाथ में कम्पन नहीं था। एक दोस्त समय से पहले आ गया था, अ ने ब्रान्डी में भीगे हुए हाथों से उसका स्वागत करते हुए उसे नमस्कार भी किया, और फिर कटोरी में हाथ डोबकर, बाकी रहती ब्रान्डी को स की गर्दन पर मल दिया—कंधों तक।

धीरे-धीरे कमरा मेहमानों से भर गया। अ फ्रिज से बरफ निकालती रही और सादा पानी भर-भर कर फ्रिज में रखती रही। बीच-बीच में रसोई की तरफ जाती। ठंडे कबाब फिर से गर्म करके ले आती। सिर्फ एक बार जब स ने अ के कान के पास होकर कहा, "तीन चार तो वह लोग भी आ गए हैं जिन्हें बुलाया नहीं था। जरूर किसी दोस्त ने उनसे भी कहा होगा, तुम्हें देखने के लिए आ गए हैं" तो पल भर के लिए अ की स्वाभाविकता टूटी पर; फिर जब स ने उनसे कुछ गिलास धोने के लिए कहा तो वह उसी तरह सहज मन हो गई।

महफिल गर्म हुई, रात ठंडी हुई, और जब लगभग आधी रात के समय सब चले गए, अ को सोने वाले कमरे में जाकर अपने सूटकेस में से रात के कपड़े निकालकर पहनते हुए लगा—कि सड़कों पर बना हुआ जादू का घर अब कहीं भी नहीं था।

यह जादू का घर उसने कई बार देखा था—बनते हुए भी, मिटते ए भी, इसलिए वह हैरान नहीं थी। सिर्फ थकी-थकी सी तकिए पर सर रखकर सोचने लगी—कब की बात है—शायद पच्चीस बरस ो गए, नहीं तीस बरस—जब पहली बार वह जिन्दगी की सड़कों पर मिले थे—अ किस सड़क से आई थी, स कौन-सी सड़क से आया था, ोनों पूछना भी भूल गए थे, और बताना भी। वह निगाह नीची किए ़मीन में नींवें खोदते रहे, और फिर वहां जादू का एक घर बन कर ड़ा हो गया, और वह सहज मन सारे दिन उस घर में रहते रहे।

फिर जब दोनों की सड़कों ने उन्हें आवाजें दीं, वह अपनी-अपनी ड़क की ओर जाते हुए चौंक कर खड़े हो गए। देखा—दोनों सड़कों बीच एक गहरी खाई थी। स कितनी ही देर उस खाई की ओर खता रहा, जैसे अ से पूछ रहा हो कि इस खाई को तुम किस तरह ार करोगी? अ ने कहा कुछ नहीं था पर स के हाथ की ओर देखा ा, जैसे कह रही हो—तुम हाथ पकड़ कर पार करा लो, मैं मजहब ी इस खाई को पार कर जाऊंगी।

फिर स का ध्यान ऊपर की ओर गया था, अ के हाथ की ओर। की उंगली में हीरे की एक अंगूठी चमक रही थी। स कितनी देर तक खता रहा, जैसे पूछ रहा हो—तुम्हारी उंगली पर यह जो कानून का ा धागा लिपटा हुआ है, मैं इसका क्या करूंगा? अ ने अपनी उंगली ी ओर देखा था, और धीरे से हंस पड़ी थी, जैसे कह रही हो—तुम क बार कहो मैं कानून का यह धागा नाखूनों से खोल दूंगी। नाखूनों े यह नहीं खुलेगा तो दांतों से खोल दूंगी।

पर स चुप रहा था, और अ भी चुप खड़ी रह गई थी। पर जैसे ड़कें एक ही जगह पर खड़ी हुई भी चलती रहती हैं, वह भी एक गह पर खड़े हुए चलते रहे।

फिर एक दिन स के शहर से आने वाली सड़क अ के शहर आ गई ी, और अ ने स की आवाज सुनकर अपने एक बरस के बच्चे को ठाया था, और बाहर सड़क पर उसके पास आकर खड़ी हो गई

हुआ है।"

सड़कों पर सिर्फ दिन चढ़ते हैं। रातें तो घरों में होती हैं—पर घर कोई था नहीं, इसलिए रात भी कहीं नहीं थी। उनके पास सिर्फ सड़कें थीं, और सूरज था, और स सूरज की रोशनी में बोलता नहीं था।

एक बार बोला था।

वह चुप-सा बैठा हुआ था जब अ ने पूछा था, "क्या सोच रहे हो?" तो वह बोला था, "सोच रहा हूं, लड़कियों से फ्लर्ट करूं, और तुम्हें दुःखी करूं।"

पर इस तरह शायद अ दुःखी नहीं, सुखी हो जाती, इसलिए अ भी हंसने लगी थी, और स भी। और फिर एक लम्बी खामोशी।

कई बार अ के जी में आता था—हाथ आगे बढ़ कर स को उसकी खामोशी में से बाहर ले आए, वहां तक जहां तक दिल का दर्द है। पर वह अपने हाथों को सिर्फ देखती रहती थी, उसने हाथों से कभी कुछ कहा नहीं था।

एक बार स ने कहा था, "चलो चीन चलें!"

"चीन?"

"जाएंगे, पर आएंगे नहीं।"

"पर चीन क्यों?"

वह "क्यों" भी शायद पान के पेड़ के समान था जिसके पत्ते फिर हवा में कांपने लगे।

□ □ □

इस समय अ ने तकिये पर सिर रखा हुआ था, पर नींद नहीं आ रही थी। स बराबर के कमरे में सोया हुआ था, शायद नींद की गोली खा कर।

अ को न अपने जागने पर गुस्सा आया, न स की नींद पर। वह सिर्फ यह सोच रही थी—कि वह सड़कों पर चलते हुए जब कभी मिल जाते हैं तो वहां घड़ी-पहर के लिए एक जादू का घर क्यों बनकर खड़ा

हो जाता है ?

अ को हंसी-सी आ गई—तपती हुई जवानी के समय तो ऐसा होता था, ठीक है, लेकिन अब क्यों होता है ? आज क्यों हुआ ?

यह न जाने क्या था, जो उस की पकड़ में नहीं आ रहा था।

बाकी रात न जाने कब बीत गई, अब दरवाजे पर धीरे से दस्तक करता हुआ ड्राइवर कह रहा था, "एयरपोर्ट जाने का समय हो गया है।"

अ ने साड़ी पहनी, सूटकेस उठाया, स भी जाग कर अपने कमरे से आ गया, और वह दोनों उस दरवाजे की ओर बढ़े जो बाहर सड़क की ओर खुलता था।

ड्राइवर ने अ के हाथ से सूटकेस ले लिया था। अ को अपने हाथ और खाली से लगे। वह दहलीज के पास अटक-सी गई, फिर जल्दी से अन्दर गई और बैठक में सोई हुई मां को खाली हाथों से प्रणाम कर बाहर आ गई।

फिर एयरपोर्ट वाली सड़क शुरू हो गई, खत्म होने को भी आ गई, पर स भी चुप था, अ भी।

अचानक स ने कहा, "तुम कुछ कहने जा रही थीं ?"

"नहीं।"

और वह फिर चुप हो गए।

फिर अ को लगा—शायद स को भी—कि बहुत कुछ कहने को था, बहुत कुछ सुनने को, पर बहुत देर हो गई थी, और अब सब बातें जमीन में गड़ गए थे—पाम के पेड़ बन गए थे और मन के समुद्र के पास लगे हुए उन पेड़ों के पत्ते शायद तब तक कांपते रहेंगे जब तक हवा चलती रहेगी।

एयरपोर्ट आ गया और पांवों के नीचे स के शहर की सड़क टूट गई।

अब सामने एक नई सड़क थी—जो हवा में से गुजर कर उस शहर की एक सड़क से जा मिलने को थी।

और वहां जहां दो सड़कें एक दूसरे के पहलू से निकलती हैं, स ने धीरे से अ को अपने कंधे से लगा लिया। और फिर वह दोनों कांपते हुए, पांवों के नीचे की जमीन को इस तरह देखने लगे, जैसे उन्हें उस घर का ध्यान आ गया हो, जो नहीं बना था।

□ □ □

पर तोहमत नहीं लगेगी, मेरे बंसी वाले।"

और फिरकी ने बेटा जनकर सारे गांव के सामने खिलाया था। बंसी का नाम लोगों के कान में मैल की तरह पड़ा हुआ था, पर उंगली नहीं उठती थी। अगर उंगली थी तो उसकी ओर—जिसने अग्नि को साक्षी कर फिरकी को ब्याहा था, और फिर पीहर में छुट-छुटाव करके बिठा दिया था।

फिरकी की कोख दूसरी बार भर गई, तो फिरकी ने पहली बार चिरोरी की थी—"अब घर बिठा ले लाला। तेरे दो बेटों की मां बन गई। एक पुरवा, एक पछुआ। दोनों दिशायें मिल गई। सूरज भगवान ने उत्तर से उगना है ना दक्षिण से। तेरा एक बेटा 'पुरवा' एक 'पछुआ' और सूरज भगवान की यात्रा सम्पूर्ण हो गई।"

फिरकी ने नैहर में अन्दर रह कर समय तो काट लिया, पर जब लोगों ने दूसरे बेटे को प्रत्यक्ष देखा—तो पंचायत जोड़ी।

यह सब कुछ—पिछले जन्म की बात थी, पर आंखों के समक्ष आज स्पष्ट दिखने लगी तो उसकी पीठ में ऐंठन होने लगी।

वह हरदोई में जिस ठेकेदार का मुंशी बना था, उसने दिल्ली में कोई नया ठेका लेकर—उसकी आंखों के आगे सोने का चुग्गा बिखेर दिया था और उसके मन का उतावला पंछी राजधानी का चुग्गा चुगने के लिए हरदोई गांव से उड़ जाना चाह रहा था।

पर पंचायत जुड़ी तो फिरकी को जवाबदेही करनी थी। आधी रात को बंसी दरवाजा खटखटा कर बोली थी—"मुझे पता है लाला! तू परेरू उड़ने की कोशिश कर रहा है। अच्छा-जा, तुझे नहीं। तू मेरा सूरज भगवान था। तेरा पुरवा भी पालूंगी और पछुवा भी—बस एक बात कहने आई हूं—तेरे सूरज को ग्रहण लगा कर तुझे विदा करूंगी।"

बंसी ने फिरकी को दिलासा दिया कि परसों स्टेशन पर आ जाइयो, तुझे साथ ही दिल्ली ले जाऊंगा। और फिरकी घर चली गई, तो बंसी ने रातों रात माल-असबाब बांध लिया था। पर फिरकी

दलासे और झूठे वायदे का भेद जान गई थी। दूसरे दिन कुछ लोग सी को स्टेशन के अधबीच से लौटा लाये थे और पंचायत के सामने ाजिर कर दिया था।

वहां फिरकी भी पंचायत के सामने हाजिर थी। दोनों आंखों में आग की लपटें लिए उसने बंसी को एक बार देखा था—और फिर च परमेश्वर को कहा था—"यही निगोड़ा मेरे पुरवा और पछुआ का ाप है। इसे सूरज भगवान मानकर मैंने पूजा था।"

बंसी को गांव की रीत का पता नहीं था, पर फिरकी जानती थी। र जब पंचों ने बंसी को उकडूं करके बांध बिठाया और फिरकी को हा कि वह उस की पीठ पर सात लातें मारे, तो बंसी को पता लगा क सूरज को ग्रहण लगाने वाली बात फिरकी ने रात को क्यों कही ी।

नंगे पैरों वाली फिरकी के जिस पैर में चांदी की पाजेब पड़ी हुई ी, उसने उसी लात से उकडूं करके बांधे हुए बंसी को भरे गांव में सात ातें मारीं और फिर गांव ने उसका नाम सतलतिया रख कर उसे ांव से निकाल दिया था।

यह पिछले जन्म की बातें आज बंसी धर को एक-एक करके याद ाईं—और उसकी पीठ नये सिरे से टीसने लगी।

उसके पीठ पर हाथ रख कर चारपाई पर से उठने की हिम्मत ी—"वह हरदोई गांव का मरियल मुंशी सतलतिया था, मुंशी कभी का र गया, सतलतिया भी मर गया—अब तो मैं दिल्ली का चौधरी हूं, ट्टेवाला ठेकेदार, चौधरी, मेरे भट्टे में सोने की ईंटें पकती हैं।"

पर रीढ़ की हड्डी जैसे चटक गई थी। चौधरी ने चारपाई की ाटी को थामा, और उसी तरह चारपाई पर औंधे पड़े हुए ने दांतों के ीचे जीभ ले ली—"पैसे ने जून बदल दी—सब बीती ऐसे हो गई थी, ैसे पिछले जन्म की बातें हों—पर इस जन्म में श्यामली।

हरदोई का मरियल मुंशी जब दिल्ली का चौधरी बना, तो खाते-ीते घरों के रिश्ते आने लगे थे। उम्र ढल गई थी, पर सोना-चांदी

कजली

पठानकोट बीस मील पीछे छूट गया था, और आगे सड़क का दूसरा सिरा अभी पचास मील दूर था कि गाड़ी की फेन बैल्ट टूट गई। गाड़ी ना एक कदम आगे हो सकती ना पीछे। एक ही चारा था कि पठानकोट की तरफ जाती किसी लारी कार में बैठकर इन्दरजीत पठानकोट जाये, और वहां से नई फैन बैल्ट खरीद कर, फिर इस तरफ आती किसी कार में बैठकर आ जाये।

वैसे सुबह का वक्त था, सारा दिन सामने पड़ा था। सांझ के अंधियारे का खौफ अभी बड़ी दूर था। इसलिए दो घंटे या इससे ज्यादा इन्तजार करना मुझे मुश्किल नहीं था। सड़क छोटी थी। गाड़ी को पहाड़ी दीवार की तरफ लगाकर, मैं खाई की ओर बैठ गई थी कि अगली या पिछली तरफ से आने वाली कारों, लारियों को वहां से संभल कर गाड़ी के पास से गुजर जाने का इशारा दे सकूं।

एक लारी बिल्कुल नजदीक आई, तो झटका खाकर खड़ी हो गई। उसका पहिया पंचर हो गया था। लारी में कई सवारियां थीं, लारी का ड्राइवर और कंडक्टर पहिया बदलने लगे, तो सवारियां उतर कर सड़क पर खड़ी हो गई। ड्राइवर किसी टौ में था, अपनी सवारियों से कहने लगा—"यही मोड़ मुड़कर मल्खनी की बावड़ी है, सब पानी-वानी पियो, या झोंपड़ी वाले चाचा की दुकान से चाय पी लो—पहिया चढ़ाकर तुम्हें आवाज दे लूंगा।"

सवारियां उसके कहे पर अगले मोड़ की तरफ चल पड़ीं तो कंडक्टर ने लारी के पहियों के साथ बड़े-बड़े पत्थर रखते हुए ड्राइवर को चुटकी मारी। "बचना! तुझे चाहे और सब कुछ भूल जाये पर

...तेरी लारी को। देख ले, सनुरी
...ी नहीं भूलेगी। ना तुझे, ना तेरी लारी को। देख ले, सनुरी
...हुंच कर पंचर हुई।"

...तो लगा मरकनी कोई औरत थी। सींग मारने वाली गाय या बैल
...तो सुना था कि मरकनी कहते हैं, पर औरत...।

ड्राइवर तमक कर कह रहा था—"साले! नाम न ले मरखनी
..., वह जैक नहीं लगेगा मुझसे...।"

उसका कंडक्टर उसकी रगें पहचानता-सा लगा था उसने फिर
...इज्जत की—"अरे! जीती थी तो मुझे हमेशा सींग मारती थी, अब
मरी हुई भी मारती है?"

पहिए के नट कसते हुए, ड्राइवर ने हाथ में पकड़ा हुआ बीलपाना
कंडक्टर के कान में फंसा दिया, और हंस पड़ा—"आ तो बच्चू पहले तेरे
नट कस लूं..." नया पहिया चढ़ गया, तो कंडक्टर दौड़ कर सामने
मोड़ के पास गया, बावड़ी शायद एक तरफ पास ही थी, उसकी
आवाज सुनाई थी,— 'आओ भाई, आओ यहां कौन-सी मरखनी बैठी
है जो तुम मिलते नहीं"—इधर ड्राइवर फिर अपनी, सीट पर बैठ कर
...हॉर्न दे रहा था, कन्डक्टर और भी कुछ कह रहा था, पर वह हॉर्न
की आवाज में डूब गया, सुनाई नहीं दिया।

सवारियां लौट आईं, लारी चली गई, तो मेरे पैर अनायास ही
उस मोड़ की तरफ बढ़ गये, जिसके एक तरफ कोई बावड़ी थी। चाय
गाड़ी में रखे थर्मस में थी, पानी की भी जरूरत नहीं थी। पर फिर भी
बावड़ी जैसे बुला रही थी।

देखा, पहाड़ी बावड़ियों जैसी सरीखी एक बावड़ी थी। एक त...
जरा-सा ऊपर सलेटों की छत वाली दो लकड़ी की कोठरियां थीं। ए...
आग जल रही थी, दहलीज के पास बैठा एक बूढ़ा आदमी अभी-अ...
खाली चाय के गिलास धो रहा था।

पास जाकर पूछा—"यही मरखनी की बावड़ी है?"

उसने गिलास से सिर उठाकर मेरी तरफ देखा तो लगा
...वह गुस्सा हो गया था। मैंने फिर हलीमी से पूछा—

अभी एक लारी खराब हुई थी तो उसके ड्राइवर ने बताया था कि यहां मोड़ पर।"

"वह कुत्ते के बीज मरघट में पड़ी हुई को चैन नहीं लेने देते।"

बूढ़े के हाथ से कांच का गिलास छिटकते हुए बचा। देखा—चूल्हे के पास टीन के छोटे-छोटे डिब्बे पड़े हुए थे। एक रुपया दीवार के पास पड़े स्टूल पर रख कर कहा—"बाबा चाय का गिलास और कुछ खाने को मिल जायेगा?"

उसने एक डिब्बा खोलकर कुछ बिस्कुट निकाले, और चाय का पानी चूल्हे पर चढ़ाकर कहने लगा—"बिटिया! यह कजली की बावड़ी है सारा जग जानता है। इसका पानी तो अब दुश्मन भी आंखों से लगाते हैं—पर कुछ ऐसे भी होते हैं जिन्हें खुदा की मार होती है—इन्सान की जून में आकर भी इन्सान नहीं बनते।"

"कजली कौन थी, बाबा?"

"कजली मेरी बेटी थी, बेटी जैसी—यह राह जाते जब बुरी नजरों से देखते, तो फिर वह उनकी पसलियां ना तोड़ती, तो क्या करती?—इसीलिए यह कुत्ते के बीज उसे मरखनी कहते थे।"

"कब मर गई?"

"थी तो जीने लायक, पर मर गई—मौत भी नहीं आई थी, पर मर गई—"और उसने कांच के गिलास उल्टे रख कर कहा—"अगर बिटिया तूने कहीं वह देखी होती।"

बाबा के मन में—लगा—खाई जैसी कोई हसरत थी। मुझ राही को वह कह रहा था—जो तूने कहीं वह देखी होती।

मैंने भी उसी हसरत से पूछा—"कैसी थी?"

चूल्हे पर से खोलती चाय शीशे के गिलास में डाल कर उसने कांपते हाथ से जब गिलास मेरे आगे रखा—लगा उसके शीशे सरीखे मन में भी कुछ उबल-खौल रहा था।

कह रहा था—"अंगूठा चूसती को झोली में डाला था।...ने कोठा बह गया। ऊपर से इतने पेड़ टूटे कि कोठा भी कहीं... ...

। बाप मर गया, मां मर गई, पर मिट्टी के ढेर से यह निक...
होनी की बेटी को तब कुछ न हुआ।"
फिर।"
"ऐसी पक्की हड्डी थी। फिर जवान हुई तो कई बवंडर उठ खड़े
"
"यहां इसी बावड़ी पर तुम्हारा घर था बाबा ?
"काहे को, अपने भरे गांव में था। अपने खेत थे—अपने खलि-
हान···।"

"फिर ?"

"कोई पिछले जन्म का लेन-देन था। गांव के नम्बरदार का बेटा
जवान हुआ तो हाथ में बन्दूक थाम कर कह गया—यह फजली किसी
और जगह ब्याही तो उस जने को बन्दूक की एकही गोली से बींध
दूंगा।"

"फिर ?"

"उससे भी नबाया, पता नहीं किन निगोड़ी मां ने जन्मा था, एक
कोई और घोड़े पर चढ़ा, हमारे गांव से गुजरा, और फजली के माथे
पर तकदीर लिखी गई।"

"फिर बाबा ?"

"चिड़िया और गुटारों की तरह उड़ती लड़की को पिंजरे में डाल
गया।"

"लौटकर आया कि ना ?"

"उसकी होनी उसे बुलाती थी, आना कैसे ना ? ढलते दिन
नहीं गया था, उगते दिन की तरह लौट आया।"

"फिर ?"

"मैं नम्बरदारों से—डरना उसको कोई हामी न भरी, पर व...
नदियों के बहाव थे, मैं कैसे थाम सकता था—उसके हाथ में भी...
थी, कहता—भुगत लूंगा नम्बरदारों के लड़कों को—लड़की उ...
ललकारती बढ़कर, कहे मुझे सिखा बन्दूक चलानी,—और उ...

सचमुच नम्बरदारों का लड़का छुट्टी आ गया।"

"फिर ?"

"चाय पानी भूल, गई थी, तो भी लगा—गर्म चाय से होंठ जल गये थे।"

"उसके आई थी—उसकी काहे को, सबकी आई थी—दोनों ने बन्दूकें तान लीं। नम्बरदारों का लड़का बन्दूक की गोली से मर गया और हम सब को कर्मों ने मार दिया।"

"वह पकड़ा गया ?

"सारा गांव गवाह था, उस बावरे ने कहां जाना था—पुलिस पकड़ कर ले गई तो फिर उसकी सूरत नहीं देखी। लड़की ने कई अर्जी दीं, पर अगलों ने यहां बात पकड़ ली कि वह अर्जी देने वाली कौन होती है—ना मां, ना बहन, घर की कोई नार।"

सामने दूर, पार तक पत्थर ही पत्थर दिखाई देते थे। लगता—कजली को सारी दुनिया ही पत्थरों की दिखाई देती होगी।

"बिटिया ! चार फेरे लिए होते, चलो वह चाहे जेल में ही था, तिमाहे छमाहे उसका मुंह तो देखती।"

"उसे कितनी सजा हुई, बाबा ?"

"सारी उम्र की ?"

"सारी उम्र की ?"

"तीन बरस बीत गये—जग ताने देवे कि भला वह उसकी क्या लगती थी ? कानून तो कागजों के होते हैं ना बिटिया ?"

कागजों पर लिखे अक्षरों में, और पत्थर पर खिंची लकीर में—क्या और कहां फर्क होता है ? सोच रही थी—यह कभी पकड़ में नहीं आता।

बाबा कह रहा था—"उसे किसी पर गुस्सा नहीं था—सिर्फ पुलिस वालों पर गुस्सा था, कि उसे सलाखों के पीछे पड़े हुए को, कभी बरस-छमाही देखने क्यों नहीं देते, थाने जाते तो वहां उसकी बेइज्जती करते कि—रोती के हाथ भीग जाते—फिर—एक-दो रिश्ते आये तो लगी

हने लगी—"चाचा, किसी से मेरा ब्याह कर द—
देख लूं।"

"फिर उसने ब्याह किया ?"

"ना ही करती—उस बेलगाम घोड़ी को लगाम कहां पड़नी थी, र फेरे दिये, उधर सोग मना कर बैठ गई—मैंने उस जने को सम-या कि सब्र से काम ले—पर वह निगोड़ा जला-भुना चौथे दिन ही ली-गलौज देने लगा। हाथों से मेंहदी भी नहीं उतरी थी, लड़की को ारने-पीटने लगा। उसने भी मारते हुए का हाथ न रोका। बदन प नील पड़ गये तो थाने जाकर रपट लिखवा आई। कहने लगी अब कानून बोलेगा, तब तो उसे दांती लग गई थी। तब उसे मेरे जख्म दिखते थे, अब तो मेरे नील दिखेंगे—अब तो इज्जत वाली हूं।"

हैरान हुई-सी मैंने पूछा—"फिर बाबा ?"

"वह पकड़ा गया, छह महीने की सजा सुनाई गई। कहा गया या तो दो सौ रुपये दण्ड भरे या जेल जाये। घर तो तगड़ा नहीं था, रुपया कहां से भरना ? पर इन लड़की की बातें—ना हमसे बूझी गई ना भगवान से। खुद ही उसे सजा दिलवाई, खुद ही जाकर उसका दण्ड भर आई। दो सौ रुपया सरकार के माथे मार कर उसे छुड़ा दिया। पर खुद, खुदा की बन्दी फिर उनके साथ न लगी। ना उनके घर गई, ना उसे अपने घर आने दिया—बस, अन्दर घुस कर बैठ गई—जैसे कब्र में पड़ी हो।

मैं सोच रही थी—पहाड़ी राह—पेचीदे मोड़ वाले, शायद इन्सान मन की रीस में बने हैं—बावड़ी की तरह मन भर आया।

वह कह रहा था—"फिर दो बरस बाद वह जिसकी सूरत भी ल गये थे, जेल तोड़ कर वह हमारे घर में आ खड़ा हुआ।"

"वह ?"

"आधी रात को। मैं तो पूस की रात की तरह कांपने लग फजनी उसे लपक कर मिली। जैसे कब्र में से उठ बैठी।"

"पर पुलिस उनके पीछे होगी ?"

कजली को भी पता था कि पुलिस उसके पीछे होगी, पर उन्हीं कपड़ों खड़े पैरों वह उनके साथ हो ली। वह घड़ी भर भी कहीं नहीं ठहर सकते थे। पहला छापा पता था, वहीं पड़ना था।

"फिर?"

"वह जगह पता नहीं सौ कोस दूर होगी। पता नहीं वह वहां कैसे पहुंचे। मुझे फिर छः महीने उनकी कोई खबर नहीं मिली। कहते हैं वह छः महीने वहां घर बनाकर रही। गुजारे के लिए—चाय की दुकान चलाती। किसी को अपने मर्द के साये ना लगने देती। दिखने को सबको अकेली दिखाई देती थी। तभी तो चिड़िया! यह हुस्न के उसे मरखनी कहते थे। अकेली देख कर पगला जाते होंगे—बस वहीं रातों के अंधेरे में चार दिन उसने जो जीना था, जी लिया—फिर पुलिस को सू लग गई। कहते हैं जब पुलिस ने घेरा डाल दिया तो कजली ने खुद बन्दूक चलाकर पहले अपने मर्द को मार दिया, फिर एक गोली अपनी छाती में मार ली—और पुलिस लाशें लेकर चल पड़ी।"

उसने छोटी अंगुयाई आंखों से—चौगिर्द के पेड़ों को, पौधों को, ऐसे देखा—जैसे पत्ते-पत्ते में से कजली और उसके मर्द का लहू रिसता हो—मरे हुए बुत तो पुलिस ले गई थी।

बावड़ी के पानी से आंखें धोती हुई, मैंने देखा—मेरे हाथ कांप रहे थे।

□ □ □

सिगरेट का टुकड़ा

ीरत को जब भी अपनी नींद के होंठों से एक स्वप्न-सी सुगन्ध
थी, उसके अपने अंग वश में न रहते थे। उसके होंठ फड़कने
, और बाल्य अवस्था में हीर और सस्सी के रंगीले गीत जो वह
ी सखियों के साथ मिलकर गाया करती थी, अपने-आप उसके
रों पर नाच उठते थे। मां टकटकी लगाकर उसके मुख की ओर
ने लग पड़ती थी, और फिर कीरत को यूं लगता, मां को उसके
ठों में से उसके स्वप्न की गंध आ रही हो। मां के माथे पर ज़रा
ी कसावट आ जाती और कीरत अपने होंठों को ज़ोर से बन्द क
ेती।

कीरत ने गाना छोड़ दिया था, परन्तु फिर भी जिस रात को
स्वप्न उसकी आंखों में घर कर जाता था, अगली सुबह उसके अंग उसके
वश में न रहते। मां कभी आवाज़ देती तो कीरत के कान तक न पहुं-
चती। मां खीज उठती तो कीरत के हाथों में पकड़ी हुई कोई चीज़ छू
जाती, या उसके पांव को दहलीज़ की ठोकर लग जाती। कीरत बार
बार अपने हाथों को देखती, पांव को देखती, एक हल्का-सा काम
उसके सभी अंगों में फैल जाता।

और फिर सर्दियों की ठंडी रातों को अपने लिहाफ़ में मुंह
छिपाकर, कीरत आर्त स्वर में कहती—'तू मेरे स्वप्नों में न आया कर,
मैं तेरे स्वप्नों को कहां छिपाऊं?'

गर्मियों में जब आंगन में चारपाइयां साथ-साथ बिछी होतीं, एक
ओर मां की चारपाई, दूसरी ओर भाई की, ज़रा दूर उसके पिता की
और जब कीरत अपनी चारपाई पर लेट जाती तो मारे डर के उ

आंखें करके तारों की ओर ताकती न थी। उसे लगता था जैसे तारों की धीमी और सांवली रोशनी में से एक स्वप्न उसके भीतर खिल उठेगा और फिर उसकी सुगन्धि सबको महसूस होने लगेगी।

इस तरह सपनों की मिन्नतें करते-करते और होंठों को भींचते हुए कीरत ने दो वर्ष पार कर दिये और अब अगले दिन सवेरे ही उसकी सगाई थी। कीरत की मां ने यह मिन्नत मानी हुई थी कि यदि शान के गांव के साहूकारों के पुत्र से कीरत की सगाई हो जाय तो वह देवी माता को सोने की नत्थ चढ़ायेगी, और अब अगले दिन ही कीरत का शगुन पड़ने वाला था। साहूकारों ने बड़ी प्रसन्नता से कीरत का सम्बन्ध स्वीकार किया था। चाहे कीरत के पिता को शगुन की २५ मुहरों के लिए अपनी एक भैंस बेचनी पड़ी थी—भैंस भी वह जिसके माथे पर चांद का निशान था—पर मां का अपनी मनौती पूरी करने का दिन आ गया था। साहूकारों के घर से कन्या के लिए रेशमी वस्त्र, हाथों की पहुंचियां, मिठाई का थाल और केसर की पुड़िया आ गई थी। रात्रि के तीन पहर बीत गये, कीरत को निद्रा ने कुछ न कहा। कुछ कहना तो दूर रहा, वह कीरत के पास तक न आयी और कीरत को जान पड़ा, सवेरा होने वाला है। अगली सुबह पिता के आंगन को भी उसका साथ छोड़ देना था। वह पराई हो जाने वाली थी। अच्छा हुआ पराई होने से पूर्व ही उसके सपनों ने भी उसका साथ छोड़ दिया। अपने हृदय के, जिस्म के सभी पंख झाड़ कर कीरत सोचने लगी, उसके सपनों के लिए तो उसके बाप के घर में भी स्थान न था! पराये पुत्र के घर में वह अपने सपने कहां रखेगी?

और फिर अपने हृदय पर से उतारे हुए पंखों की ओर उसने एक बार नजर दौड़ाई—एक आखिरी नजर—आखिरी बार टूटे पंखों को तन के साथ जोड़कर वह रो पड़ी, 'आखिरी बार, अन्तिम बार मेरे सपनों में आ जा!—मेरे ख्यालों में आ जा!—' और दो वर्ष पूर्व कीरत की जाग्रत् आंखों में जो सपना आया था, आज फिर पूरे का पूरा उसकी आंखों के सामने से गुजर गया।

क सुबह कीरत के पिता ने स्टेशन पर घोड़ी
ई को शहर से आना था। दस दिनों की छुट्टियां थीं, और कीर
ाई, जो शहर के किसी कालेज में पढ़ता था—अपने गांव आ रहा
कीरत का बाप कीरत की मां से कह रहा था, "लड़का ही नहीं,
र से उसका दोस्त भी साथ आयेगा, मीठे चावल पकाओगी तो
दाम की गिरियां उसमें जरूर डालना। उसके चौबारे में नवार की
रपाई बिछाना, और उस पर अच्छी-सी चादर हो। लड़का यह न
हे उसके दोस्त का अच्छा सत्कार नहीं हुआ।"

कीरत को अपना भाई बड़ा प्यारा था। दोस्त के लिए उस
चौबारे की पक्की ईंटों तक को मल-मलकर धोया था। अपने हाथों
काढ़ी हुई दुसूती की नयी चादर बिछाई थी और अब स्टेशन से गां
रही घोड़ी की राह देख रही थी।

जब कीरत का भाई आया तो उसका दोस्त भी आया। जाने श
की कैसी हवा वे साथ लाये थे कि कीरत को अपने घर की हर चीज
से मीठी-मीठी सुगन्ध आने लगी।

इधर-उधर के काम करते उसे प्रभात से रात हो जाती और र
दिनों को जैसे दिन में ही समाप्त होने की जल्दी थी।

कीरत का भाई कहता, उसका मित्र कोई साधारण व्यक्ति नह
यह सुल्तान था, गीतों का सुल्तान, उसके गीत बड़े-बड़े शहरों में गा
जाते थे। और कीरत के भाई ने कहा—"यह तो हमारे गांव का सौ
है कि वह हमारे गांव में आया है और हमारे घर आया है।"

सुल्तान को सुबह-सवेरे बिस्तर पर ही चाय पीने की आदत थी
भाई ने कीरत को अच्छी तरह समझा दिया था कि वह चाय का प्या
बनाकर ऊपर के कमरे में, वह चाहे सोया पड़ा हो, उसके सिरहाने
आया करे। प्रभात की पहली किरण और कीरत जैसे एक साथ
जागती थी। रात की धीमी-सी सोई आंच को कुरेदकर नयी त
से आंच तैयार करती। चाय का प्याला बनाकर ऊपर के कमरे में
आती। आते हुए ज़रा-सी खट-खट की आवाज़ कर देती जिस

ह जाग जाये और चाय ठंडी न हो जाये। एक सुबह जब चाय के याले को छलकने से बचाती कीरत धीरे-धीरे सीढ़ियां चढ़कर ऊपर गी तो गीतों का बादशाह सुल्तान लालटेन के मद्धम-से प्रकाश में कुछ लख रहा था। कीरत ने सोचा, शायद उसे देरी हो गयी थी, पर सुल्तान ने हंसकर कहा, देरी उसे न हुई थी, बल्कि नींद को ही देर हो गयी थी और सारी रात उसने लालटेन के धीमे प्रकाश में अपने कागज़ों के साथ ही व्यतीत कर दी।

"आज मैंने तुम्हारा कमरा कितना खराब कर दिया है।" सुल्तान ने कहा, और कीरत ने एक दृष्टि कमरे पर डाली। चारपाई के पास सिगरेटों के कितने ही टुकड़े पड़े थे, और ज़रा-ज़रा-सी राख सारे कमरे में फैली हुई थी।

कीरत को याद आया कि रात वह कमरे में पीतल की कटोरी रखना भूल गयी थी। वह उलटे पांव कटोरी लेने चली गयी।

बर्तनों के चमकते हुए मुख भी कीरत को झांकने लगे, और कितनी ही पीतल की कटोरियों को पकड़-पकड़कर उसने छोड़ दिया। क्या ले जाऊं, कीरत ने सोचा, पर कोई भी चीज़ उसकी आंखों में नहीं जंची।

पिछले वर्ष कीरत का भाई उसके लिए शहर से एक लाल रंग की सेलोलाइड की छोटी-सी प्लेट को लाया था, उसे कीरत ने संभालकर अपने ट्रंक में रख छोड़ा था। प्लेट का सुर्ख और चमकता हुआ रंग कीरत की आंखों में चमका और कीरत ने दबे पांव पिछले कमरे में जाकर अपना ट्रंक खोला, नन्ही-सी सुर्ख प्लेट को निकाला और उसे अपनी चूनर में छिपा लिया।

सुल्तान के सिरहाने पलंग के पास रखे लकड़ी के स्टूल पर चाय का प्याला उसी तरह पड़ा था, कीरत ने अपनी चूनर में से प्लेट निकालकर प्याले के पास रख दी, "यह मैं प्लेट लायी, तुम्हारे लिए।"

"इतनी सुन्दर प्लेट में सिगरेट बुझाऊं?" सुल्तान ने हंस कर

कीरत के मुंह की ओर देखा और फिर हाथ का कागज़ कीरत के सा
कर दिया।

"नया गीत!" कीरत की वाणी जैसे शिथिल हो गयी। की
को ऐसा प्रतीत होता था कि सुल्तान के साथ बात करने के लिए उ
पास बुद्धि न थी, जब कभी सुल्तान उसके गांव की कोई बात पूछ
तो उसके गले में जैसे एक संकोच-सा जम जाता और उसका जव
हमेशा रुक-रुक जाता।

"गीत, नया गीत, गीतों के शाह का गीत!" कीरत को यूं ल
जैसे वह कागज़ उसके हाथों थमता नहीं, और उसके हाथों में
कम्पन-सा आ गया।

"आप सारी रात नहीं सोये।" कीरत ने संभल-संभलकर कहा।

"इस गीत ने सोने नहीं दिया।" सुल्तान ने धीमे से कहा।

गीत वाले कागज़ में जाने कैसी किरणें थीं। कीरत से उनका
सहन नहीं हो पाता था, कीरत ने फिर ज़रा साहस से पूछा—"
लूं?"

"केवल तुम्हारे पढ़ने के लिए ही लिखा है।" और सारी रात
जगे सुल्तान ने अपने सिर को सिरहाने का आश्रय दिया।

कीरत अपने गांव के स्कूल में पढ़ी हुई थी, और बाद में उस
भाई ने भी उसे काफी कुछ पढ़ा दिया था, परन्तु कीरत को यही अ
भव हुआ कि वह इस गीत को पढ़ सकने के योग्य न थी।

"आप पढ दें।"

"लिखूं भी मैं और पढ़ूं भी मैं!" वह मुस्करा दिया।

कहने के लिए कीरत को कुछ न सूझा और सुल्तान ने गीत प
दिया—

लिख जा मेरी तकदीर को मेरे लिये
मैं जी रहा तेरे बिना तेरे लिये।
हरफ मेरे तड़प उठते इस तरह—
रात भर तारे सुलगते जिस तरह।

जा रही है उम्र मेरी बेवफ़ा,
बेचैन है तेरे लिए यह पथ सदा,
चीर कर सपनों को तू आ जा ज़रा !
रात बाकी बहुत है ना जा ज़रा !

सुल्तान ने जल रहे सिगरेट का आखिर सिरा अंगुलियों में थाम रखा था। उसकी जलन पोरों को छूने लगी थी, कौरत ने लाल सुर्ख प्लेट सुल्तान के आगे कर दी और जब उसने प्लेट में सिगरेट बुझाया प्लेट की सुर्ख छाती में सिगरेट जितना गोल काला छेद पड़ गया।

"मैं भी पागल हूं, प्लेट ही जला दी !" वह प्लेट को हाथ में लेकर देखता रहा। इससे पहले न सुल्तान को और न ही कौरत को यह ख्याल आया था कि सिलोलाइड की प्लेट अग्नि का ताप सहन नहीं कर सकती। कौरत ने हंसकर छेदवाली प्लेट और गीत वाला कागज अपनी चादर में छिपा लिया और सीढ़ियां उतर आयी। दस दिनों को खतम हुए बिना न रहना था, कौरत की सांसों में एक जलन-सी मिलती जा रही थी। ग्यारहवें दिन जब कौरत का भाई और सुल्तान शहर वापिस लौटने लगे तो मां ने उसको कहा—"बेटा, हम तुम्हारी कोई सेवा नहीं कर सके।"

सुल्तान ने मां के चरण स्पर्श किये, "ये दिन सदा मेरे मन में बसे रहेंगे।" और फिर सुल्तान ने कौरत के मुंह की ओर इस तरह देखा जैसे सारी की सारी कौरत को अपनी आंखों में भर लिया हो। सुल्तान चला गया, अगली सुबह मां को कौरत की नींद में से किसी सपने की गंध आ गयी। उसने कौरत को एकान्त में बिठाकर कहा, "ये नज़रें मैं पहचानती हूं बेटी। सारी उम्र का रोग न लगा लेना, हम हिन्दू, वह मुसलमान, यह अनहोनी नहीं हो सकती !"

कौरत ने अपनी मां की सब बातें अपने कानों में समा लीं। वह थक-हार गयी। कोई बात उसके दिल में नहीं उतरती थी। कौरत को तब भी अपनी निद्रा के अधरों पर से किसी सपने की महक आती, उसके अंग उसके वश में न रहते, वह बार-बार अपने हाथों की ओर

उसके सारे अंगों में एक हल्का-सा कम्पन
...ती, अपने पांवों को देखती, उसके सारे अंगों में एक हल्का-सा कम्पन
...ता था।

रात का चौथा पहर समाप्त हुआ, कीरत अभी तक उस सपने में
...ई हुई थी, जो दो वर्ष पूर्व उसकी जाग्रत् आंखों में आया था। कीर
...हिले डरा करती थी, कोई उसकी निद्रा के अधरों में से उसके सपने व
...ंध पा जायेगा, परन्तु आज उसे यूं प्रतीत होता था जैसे वह जा
सपना उसके रोम-रोम में ग्रथित था, और आज दिन के प्रकाश में
उसकी महक फैल जायेगी और उसकी गंध साथ वाले गांव के घर त
...भी पहुंच जायेगी।

कीरत की सखियों ने सारा आंगन भरा था कोई उबटन बना
रही थी, कोई कंघी और चोटी लिए फूली न समाती थी, और कोई
कीरत की ससुराल से आये वस्त्राभूषणों को परखकर देखती थी।
उन्होंने कई गीत गा दिये। एक खत्म करती थी तो दूसरी बोल उठा
लेती थी। कीरत को, न जाने, किस समय सखियों ने बातों से पकड़
लिया, आंगन के एक कोने में पटरी पर बिठा दिया, चारों ओर फुल-
...ारी तानकर हल्दी में मढ़ा उबटन मलने लगीं।

कीरत को हर क्षण ऐसा मालूम होता था कि गांव की सभी लड़-
कियों को उसके रोम-रोम से सपने की सुगन्ध आ रही है, और वे सब
मिलकर उसके बदन से उस महक को दूर करने का प्रयत्न कर रही हैं।

कीरत ने न अपनी बांह पीछे हटाई और न कोई अन्य अंग ही,
सखियां उबटन मलती रहीं और गाती रहीं।

और फिर लड़कियों ने उसे नहला-धुलाकर उसके बाल गूं...
मोतियों की जड़ी नयी चोटी पहनाई और नये वस्त्राभूषण पहना क...
उसे रंगीले पीढ़े पर ला बिठाया। कीरत के अंग जैसे उसके अपने न...
थे, सब कुछ बेगाना हुआ जा रहा था। और किसी बेगानी चीज़...
उसका कोई अधिकार न था।

कीरत के मस्तक पर ससुराल से आया हुआ केसर चढ़ाकर...
की बड़ी बूढ़ी ने जब उसके मुंह में मिठाई की टुकड़ी रखी, तो...

ड़की ने बड़े चाव से जाकर कहा, "मेरा भाई शहर से तवे वाला
जा लाया है, मैं वहीं ले आई हूं, मुझे बजाना भी आ गया है।" और
स लड़की ने रिकार्ड चढ़ा दिया :

> लिख आ मेरी तकदीर को मेरे लिए,
> मैं जी रहा तेरे बिना तेरे लिए !

कीरत को यूं लगा जैसे कोई विष उसके मुंह में घुल रहा हो, और
ीरत की चीख निकल गई।

रिकार्ड में से आवाज़ आ रही थी :

> चीर कर सपनों को तू आ जा ज़रा
> रात बाकी है बहुत ना जा ज़रा !

लड़कियां कीरत के मुख पर अपने पल्लुओं से हवा करने लगीं।
ीरत को ऐसा प्रतीत हुआ जैसे वह सिलोलाइड की नन्ही-सी प्लेट
ो, और किसीने आज जलते हुए सिगरेट का टुकड़ा उसपर रख दिया
ो। और अब, प्लेट के सुर्ख सीने में गोल काला छेद पड़ गया हो।

□ □ □

मुस्कराहट का पंछी

[स]ौली को लगा, जैसे आज उसके पैरों तले धरती बहुत मुलायम [हो ग]ई हो। बेवाई से फटी हुई अपनी एड़ियों पर जब उसने अपने [शरी]र का सारा बोझ डाला, तब भी उसको लगा, जैसे किसी ने उसके [पैरो]ं तले हथेलियों-सा कुछ मुलायम-मुलायम रख दिया हो।

फिर उसको ख़याल आया कि कहीं आज वह रोज़ का रास्ता तो [क]हीं भूल गई थी—वह रास्ता जो ऊंची-ऊंची इमारतों के पिछवाड़े से चल ज़ाता हुआ चटाइयों से बनी हुई खोलियों की बस्ती की ओर जाता था, और जिस पर कंकड़, पत्थर और कांच के टुकड़े बिखरे हुए थे। नहीं, वह रास्ता भूली नहीं थी, क्योंकि सामने ताड़ के पत्तों की छत [व]ाली उसकी खोली उसको दिखाई देने लगी थी। सौली के होंठ के चि-[र]काल से एक खाली घोंसले की तरह थे, और आज उसको लगा, जैसे मुस्कराहट का पंछी कहीं से उड़ता-उड़ता आकर उसके होंठों के घोंसले में बैठ गया हो।

सौली ने अपनी खोली का दरवाजा खोला और भीतर घुसकर एक कोने में इस प्रकार खड़ी हो गई, जैसे यह खोली उसकी अपनी नहीं थी, और वह किसी अजनबी की खोली में आ गई थी। उसे जान पड़ा कि चाहे वह खोली उसकी अपनी थी या किसी और की, पर वह गलती से उस खोली में नहीं आयी थी। वह जान-बूझकर और सोच-समझकर उस खोली में आयी थी। और फिर उसको लगा कि आज वह उस खोली में न घर वालों की भांति आयी, और न मेहमानों की भांति। आज वह उस खोली में चोरों की तरह आयी थी। और अब वह ए[क] कोने में खड़ी, खोली की सब चीजों को इस प्रकार देख रही थी।

इनमें से उसके उठा ले आने के लिए कौन-सी काम की चीज़ थी।

उसे जान पड़ा कि खोली के सामने के कोने में कोई चीज़ चमक रही है। उसने गौर से देखा। वहां दो आंखें उसकी ओर टुकुर-टुकुर देख रही थीं। सौली ने उन आंखों को पहचान लिया। वे दो आंखें उस मर्द की थीं, जिसके साथ उसका ब्याह हुआ था। सौली ने अपनी आंखें उससे दूर न हटाई, बल्कि घूसकर उन आंखों की ओर देखा और कहा 'तुझे क्या हक़ है मेरी ओर इस प्रकार देखने का—तू जिसने जीते-जी मुझसे आंखें फेर लीं? मेरे पेट में तेरा बच्चा पल रहा था, जिस समय तू पड़ोसियों की एक जवान लड़की के साथ भाग गया था। तूने उस समय एक बार भी न सोचा कि मैं तेरे बाद किस तरह जिऊंगी, कहां से खाऊंगी, कहां से पहनूंगी, और तेरे बच्चे को कैसे पालूंगी।''

सौली की सांस सुलग उठी और वह जल्दी-जल्दी कहने लगी, "पांच वर्ष मैं वह धोतियां पहनती रही हूं, जिनको मैं एक तरफ से सीती थी तो वे दूसरी तरफ से फट जाती थीं। तूने तब कभी मेरी ओर नहीं देखा। और आज जब मैंने नयी खड़-खड़ करती धोती पहनी है, तो तू मेरी ओर टुकुर-टुकुर देख रहा है!...और पांच वर्ष मैं वह टूटी हुई चप्पलें घसीटती रही हूं, जिनसे से मेरी एड़ियां हमेशा बाहर निकली रहती थीं, और रास्ते के कंकड़ मेरे पैरों का इन्तजार करते रहते थे। और आज जब मैंने रबड़ की नयी चप्पलें पहनी हैं, जिनके कारण मुझे सारी जमीन कोमल लग रही है, तो तू मेरी ओर घूर-घूरकर देख रहा है! तुझे मेरी ओर देखने का क्या हक़ है?''

सौली के होंठों पर बैठे हुए मुस्कराहट के पंछी ने इस प्रकार पंख फड़फड़ाये, जैसे वह सामने के कोने में चमकती हुई दोनों आंखों पर झपट पड़ेगा।

फिर सौली ने अपनी आंखें उस कोने से हटा लीं और खोली के दूसरे कोने की ओर देखा। उस कोने में भी सौली को लगा, जैसे कोई चीज़ चमक रही हो। सौली ने ध्यान से देखा, और वे आंखें पहचान लीं। वे दोनों आंखें वर्षों पूर्व मर चुके उसके बाप की आंखें थीं। सौली

ने बड़े प्यार से उन आंखों की ओर देखा। और फिर वह नम्रता से कहने लगी, "बापू मेरी ओर इस तरह न देख। मौत के पंजे ने जब तेरी गरदन को पकड़ लिया था। तो तूने चुपचाप अपनी सांस तोड़ दी थी। तब तूने कोई विरोध कहां किया था? आज जिन्दगी के पंजे ने मेरी गरदन को पकड़ लिया है। मैं भी चुपचाप अपनी सांस तोड़ रही हूं। तू क्यों नहीं समझता कि अगर कोई मौत के पंजे से नहीं छूट सकता, तो जिन्दगी के पंजे से कैसे छूटेगा?

"···ज़िन्दगी का पंजा मौत के पंजे से भी ज्यादा मजबूत होता है, बापू!"

सोली ने झटपट अपनी आंखें उस कोने से हटा लीं। सोली को लगा कि उसके होंठों के घोंसले में मुस्कराहट का पंछी इस प्रकार पर मार रहा है, जैसे अभी-अभी कहीं उड़ जाएगा।

सोली ने खोली के तीसरे कोने की ओर देखा। और उसको लगा जैसे वहां भी कोई चीज़ चमक रही थी। सोली ने एक दीर्घ विश्वास खींचा। उसने उस कोने में चमकती हुई अपनी मां की आंखें पहचान ली थीं—मां की आंखें, जिन्हें छः महीने पहले उसने अपने हाथों से बन्द किया था।

जैसे हरेक के मुंह से मुसीबत के समय 'मां' निकल जाता है, सोली के मुंह से भी उसी प्रकार निकल गया—"मां!"

और फिर सोली के सारे शरीर में इस ममता वाले रिश्ते की एक कंपकंपी छिड़ गई। इस कंपकंपी में सोली का मन रो पड़ा। वह कहने लगी, "मां, आज तू कैसे देख रही है मेरी ओर? तुझे तो अच्छी तरह मालूम है कि तू इस खोली में बैठकर मेरे बच्चे को खिलाती रहती थी, और मैं सारे दिन किसी के बरतन मांजती थी, किसी का फर्श पोंछती थी, किसी के कपड़े धोती थी। फिर तू इस खोली से चली गई—इस दुनिया से चली गई। तब मैं अपने पुत्र को इस खोली में अकेले छोड़ जाती थी। और सारे दिन किसी के बरतन मांजती थी, किसी का फर्श पोंछती थी, किसी के कपड़े धोती थी। और जब सांझ को लौटती थी,

तो मेरा पुत्र उलाहनों से घिरा बैठा होता था। वह लोगों की चीजें गायब करने लगा था, मां! उसे किसी दिन पक्का चोर बन जाना था मां!"

सोली रोने लगी और रोते-रोते कहने लगी "वह सड़कों पर खड़ा होकर लोगों से पैसे मांगने लगा था। उसे—उसे एक भिखारी बन जाना था, मां! मैंने—और कुछ नहीं किया, बस उसकी जगह मैं खुद चोर बन गई हूं, मां! और अब मैं उसको चोर नहीं बनने दूंगी। उसकी जगह मैं खुद भिखारिन बन गई हूं, मां! और अब मैं उसको भिखारी नहीं बनने दूंगी।..."

सोली ने अपनी आंखें पोंछी। और वह शांत स्वर में कहने लगी, "आज मैंने उसको स्कूल में दाखिल करा दिया है, मां! अब मेरा बच्चा पढ़ेगा। आज मैंने उसको कापी और स्लेट दे दी है। और साथ ही आज मैंने उसको बिस्कुट और केला ले दिया है। आज वह जब स्कूल से आयेगा, तो वह सड़क पर लोगों से पैसे मांगने नहीं जायेगा। आज वह अपना सबक याद करेगा।"

"और हां, सच, मां तुझे तो पता है कि कमेटी वाले हमें कितना तंग करते हैं! कई बार उन्होंने हमारी ये खोलियां गिरवा दीं और जब वे गिरा-बिगाड़कर चले जाते थे, तो हम बेशर्मों की तरह फिर इन बांसों को गाड़कर अपनी खोलियां बना लेते थे। इस बार वे सबको चेतावनी दे गए हैं कि दीवाली के बाद वे हम सबकी खोलियां गिराकर हमारे बांस व चटाइयां भी उठा ले जाएंगे—और, मां, आज मैं यह अपनी खोली की चिन्ता भी खत्म कर आई हूं। आज तो मैं सिर्फ इसमें से कुछ जरूरत की चीजें लेने आई हूं। साहब ने मुझे क्वार्टर दे दिया है।"

सोली ने क्षण-भर के लिए चुप होकर, मां की आंखों की ओर देखा। और उसे लगा, जैसे उसकी मां अभी भी कुछ पूछ रही थी। सोली जल्दी से कहने लगी, "वही साहब, जिसने मुझे यह नयी धोती दी है, और यह रबड़ की नयी चप्पलें। उसने मुझे पैसे भी दिये हैं, मां।"

और सोली को याद आया कि आज स्कूल की फीस देकर और अपने बेटे के लिए कापी, स्लेट, केले और बिस्कुट खरीदकर भी उसके पास पैसे बचे हुए थे। उसने अपनी धोती के छोर को टटोला। एक-एक रुपये के तीन नोट और कुछ रेजगारी उसकी धोती के ठोक में बंधी हुई थी। और फिर सोली को लगा, जैसे उसकी मां की आंखें पैसों की उस छोटी-सी गांठ को बड़े गौर से देख रही हों। और सोली जल्दी से कहने लगी, "मां, मुझे पता है कि तू दवा के अभाव में मर गई। वह अस्पताल, जो गरीबों से चवन्नी लेकर दवा देता है, वहां तो सारे दिन खड़े-खड़े बारी भी नहीं आती थी। और दूसरे डॉक्टर बहुत रुपये मांगते थे।"

"तू कहती होगी कि 'आज तुझे पुत्र को स्कूल में दाखिल कराने के लिए पैसे मिल गए। तब तुझे मां के लिए दवा लाने के लिए क्यों पैसे नहीं मिले?' इस बात से मैं लज्जित हूं, मां! अगर मैं तभी-तभी।"

सोली की आंखें पुनः भर आईं और वह मां से कहने लगी, "यह साहब तो तब भी यह बात कहता था। पर मुझे उसकी सांस से शराब की तेरा बू आती थी। और यह बात भी मुझे उस बू-जैसी बुरी लगती थी। पर कल—कल मैं सांस रोककर शराब की सारी बू सह गई, और यह बात भी—यह बात भी सह गई।"

खोली के तीनों कोनों से सोली ने मुंह फेर लिया। चौथे कोने में वह स्वयं खड़ी हुई थी। आंसू बह-बहकर उसके होंठों को भिगोते जा रहे थे। उसने आंखें पोंछीं, फिर गाल पोंछे, और फिर होंठ पोंछे। और उसे लगा, जैसे उसके होंठों के घोंसले से मुस्कराहट का पंछी कहीं उड़ गया हो। सोली ने घबराकर खोली के दरवाजे में से बाहर देखा। बाहर उसका बेटा हाथ में स्लेट और कापी लिये, स्कूल से आ रहा था।

"मां!"

"हां, मेरे बेटे!"

"मैं पढ़कर आया हूं।"

'हां, मेरे लाल !"

"अब मैं रोज स्कूल जाया करूंगा।"

'हां, मेरे बच्चे !"

"मां, तू मुझे रोज बिस्कुट देगी ?"

"हां, मेरे लाल !"

"केला भी ?"

"हां।"

"अब मैं किसी की चीज नहीं उड़ाऊंगा, मां, और किसी से पैसा नहीं मांगूंगा।"

सौली ने देखा, बच्चे के होंठों पर मुस्कराहट का पंछी बैठा हुआ था। उसने डरकर, कांप कर आकाश की ओर हाथ जोड़े। 'हे भगवान्, मेरे बच्चे के होंठों पर से मुस्कराहट का पंछी कभी न उड़े—हे भगवान्, कभी न उड़े !'

□ □ □

अमाकड़ी

किशोर के होंठ जवानी के रोप और बेबसी के गर्म पानियों उबल रहे थे। और इन होंठों से जब उसने अपनी विवाह की पहल रात में अपनी बीवी के जिस्म को छुआ, उसे लगा कि वह एक ज्वा दालजन सा रहा था।

किशोर के बाप ने आज सारी हवेली का मुंह-माथा बिजली व रोशनी से संवारा हुआ था, पर किशोर के सोने के कमरे को आ सारी हवेली से विशिष्ट रूप देने के लिए किशोर की बहनों ने औ किशोर की भाभियों ने जिनमें उसके दोस्तों की बीवियां भी शामि थीं, और जिनके साथ उसके दोस्त भी मिले हुए थे, मोमबत्तियों व रोशनी चुनी थी।

किशोर ने मोमबत्तियों की रोशनी में अपनी बीवी के मुंह व ओर देखा। उसकी बीवी के गोरे-गोरे मुख पर एक मुस्कान थी। कि किशोर ने मोमबत्तियों की ओर देखा, मोमबत्तियों के गालों प पिघलती मोम के आंसू बह रहे थे। और किशोर के दिल में इच्छ जगी कि वह अपनी सारी की सारी बीवी को झकझोर कर कहे कि वह देख, इन मोमबत्तियों के आंसू तुम्हारी एक मुस्कान का मूल्य चुक रहे हैं।

किशोर ने अपनी जबान दांतों के नीचे दबा ली। उसे लगा कि अभी उसकी बीवी खिलखिला कर हंस उठेगी और कहेगी, 'आप इस हवेली की बैठक को तो देखो। अगर एक कोने में रेडियोग्राम पड़ा है तो दूसरे कोने में रेफरीजरेटर रखा है। तीसरे कोने में कपड़ों से भरे-पूरे ट्रंक पड़े हैं और चौथा कोना पलंगों और अलमारियों

बस, इस तरह पहले साल की छुट्टियां हंसी-खेल में ही बीत गई थीं। किशोर शहर लौट आया था। और शायद कोई नन्ही-सी, रेशम-सी अमाकड़ी का आकर्षण भी अपने साथ ले आया था, जिसे उसने सिर्फ उस समय महसूस किया जब अगले साल गर्मी की छुट्टियां हुईं और किशोर फिर ननिहाल चला गया था।

इस बार जब उसने गांव जाकर अमाकड़ी को देखा, उसे लगा कि पिछले साल जो तीखी-सी, पतली-सी और सांवली-सी अमाकड़ी आम की टहनी-सी लगती-थी, इस बार वह पूरा आम का पौधा बन गई थी। घने पत्तों जैसे बाल अमाकड़ी के माथे पर गिर रहे थे। और इस बार उसकी आंखें बिलकुल ऐसी थीं जैसे किसी ने आम की फांकें काटकर उसके मुख पर रख दी हों।

किशोर अमाकड़ी के मुख की ओर देखता रह गया था और किशोर को उस समय होश आया जब अमाकड़ी ने घबड़ाकर अपने दोनों हाथों से अपनी आंखें ढक ली थीं, आम की फांकें ढक ली थीं, और फिर जल्दी से आमों के बाग से भाग गई थी।

वैसे दूसरे दिन किशोर ने देखा था कि पेड़ों की छाया में उसके लिए एक नई खाट डाली हुई थी और खाट के पाये के पास पानी से भरा हुआ एक कोरा घड़ा रखा हुआ था। और उस दिन दोपहर को अमाकड़ी जब अपने बाग में आई थी तो उसके शरीर पर कच्चे हरे रंग की कमीज थी और उसके हाथों में उसी रंग की कांच की चूड़ियां थीं।

इन छुट्टियों में अमाकड़ी के लिए किशोर की भूख जगी थी और फिर वह भूख उसकी आंतों में सुलगने लगी थी। इसी भूख के हाथों छटपटाकर एक दिन किशोर ने अमाकड़ी की बांह पकड़ ली थी, पर अमाकड़ी ने बांह छुड़ाकर कहा था, 'किशोर बाबू! आम की इस फांक को खाकर तुम्हारा क्या संवरेगा? आज तुम इसे चखोगे और दूसरे दिन एक छिलके की तरह फेंक जाओगे।' अमाकड़ी ने अपना मुंह परे कर लिया था और किशोर का मुंह भूख से तड़पता

रह गया था।

ये छुट्टियां हंसी-खेल में नहीं बीती थीं, बल्कि आंसुओं की तैयारी में बीती थीं। इस बार किशोर जब शहर लौटा था, कुछ आहें वह अपने साथ ले आया था, और कुछ आहें वह अमाकड़ी को दे आया था।

और फिर वह अगले साल की गर्मियों का इन्तजार न कर पाया था। सर्दी की छुट्टियां चाहे थोड़ी थीं, पर वह कांपते पैरों से अपनी ननिहाल पहुंच गया था और वह अपनी जेब में वह दुनिया के सारे इकरार भर ले गया था। और इस बार अमाकड़ी ने उसके लिए अपने मन की फांक चीरकर अपने तन की थाली में परस दी थी।

और फिर अगले साल जब गर्मी की छुट्टियों में वह अपनी ननिहाल गया था, तो उसने अमाकड़ी को, आम की फांक को, अपनी दोनों आंखों से चूसकर कहा था :

'आज तुम्हारे घुंघराले बाल मुझे शहद के छत्ते-से दिखाई देते हैं, और तुम्हारे होंठ कोरा शहद !'

'और मेरी आंखें ? ये शहद की मक्खियां नहीं लगतीं तुम्हें ? छत्ते से संभलकर हाथ डालना।'

अमाकड़ी ने उत्तर दिया था और किशोर को सचमुच लगा कि जैसे ये आंखें शहद की मक्खियों की तरह उसके दिल को डंक मार गई हों, और अब उसके दिल पर एक सूजन-सी चढ़ी जा रही थी।

आम की फांक को शहद का छत्ता बने अभी थोड़े ही दिन हुए थे, जब किशोर ने एक दिन उसके ताजे-धुले बालों को सूंघकर उससे कहा था :

'शराब मैंने कभी पी नहीं, पर तुम्हें देखते ही मेरे होश-हवास खो जाते हैं।'

और इस तरह अमाकड़ी का रूप इस तरह हो गया था जैसे वह आमों के रस को, शहद के बूंदों को और शराब के घूंटों को मिलाकर पी लिया गया हो।

उन बार किशोर जब अमाकड़ी से बिछुड़ने लगा था, अमाकड़ी की बाहें उसके बदन से छूटते समय ऐंठ गई थीं। और बावरी हुई अमाकड़ी ने किशोर की बांहों पर जगह-जगह अपने दांत गाड़कर लाल निशान उघाड़ दिए थे और कहा था, 'ये अनार के फूल जितने दिन तुम्हारी बांहों पर खिले रहेंगे, मुझे उतने दिन तो याद करोगे।'

'मेरी जंगली बिल्ली, मेरी हलकाई बिल्ली—' और किशोर ने अपनी बांहों पर उभरे हुए लाल फूलों को चूमकर एक आम की फांक का, एक शहद के छत्ते का, और एक शराब की सुराही का एक नया रंग देखा था।

उन गर्मियों में बरसात कुछ जल्दी आ गई थी और उस दिन अमाकड़ी ने शाम की हलकी सर्दी में अपने गले में काले सूप की वह कुड़ती पहनी हुई थी जिसकी सारी छाती सीप के सफेद बटनों से मढ़ी हुई थी।

अमाकड़ी के कानों में चांदी की वालियां थीं, और हाथों में कांच की चूड़ियां थीं। बस, यही मुट्ठी-भर बटनों का, तोला-भर चांदी का और थोड़े-से कांच का शृंगार करके अमाकड़ी खड़ी हुई थी। उस दिन किशोर को पहली बार एक अल्हड़ गंवार लड़की के शृंगार का और पढ़ी-लिखी शहरी लड़कियों के शृंगार का फर्क समझ में आया। उस दिन से लेकर किशोर को अपने शहर की और अपने कालेज की सभी लड़कियां उन हैंगरों की सी दिखाई देने लगीं थीं जिन पर कोई तरह-तरह के फैशनों के कपड़े सीकर टांग देता है।

फिर किशोर के मन की यह खुशबू और अमाकड़ी के मन की यह खुशबू गांव से उड़ती-उड़ती शहर में आ पहुंची थी, और जब किशोर के बाप को इस बात का पता लगा था, तो उसने किशोर की मां को पास बिठाकर कहा था, 'एक बार अगर कोई मुहब्बत के कुएं में गिर पड़े तो फिर वह किसी से नहीं निकाला जाता। यूं ही बेटे को न गंवा देना! जल्दी से विवाह का रास्ता डाल दे और इसे कुएं से निकाल ले।'

यह नहीं था कि किशोर ने हाथ-पांव नहीं मारे थे, पर उसके मां-बाप की जिद एक तैराक की तरह हाथ में शादी का रस्सा लेकर उस कुएं में उतर पड़ी थी और किशोर को कस-बांधकर इस कुएं में से निकाल लाई थी।

आज विवाह की पहली रात थी और किशोर अनारकली को इस तरह याद कर रहा था जैसे कुएं की जगत पर खड़ा होकर कुएं में झांक रहा हो। अब उसे मालूम था कि अगर वह चाहे भी तो पुनः उस कुएं में नहीं गिर सकता था, क्योंकि अब उसकी गर्दन में उसके विवाह का रस्सा बंधा हुआ था। पर फिर भी अभी वह कुएं की जगत से नहीं उतर पा रहा था। शायद इस कुएं का जो पानी उसने पिया था, वह पानी उसकी नाड़ियों में अपना हक मांग रहा था।

रात शायद खत्म होने पर आई थी। हवेली की बत्तियां एक-एक कर बुझने लगी थीं। और किशोर को लगा कि अनारकली के गले में पहनी हुई कुड़ती के कोई सीप के बटनों को एक-एक करके तोड़ रहा था।

प्रातःकाल जब किशोर की बहनों और भाभियों ने रात के जगने से किशोर की लाल हुई आंखें देखीं, तो वे हंसी से दुहरी होती किशोर को छेड़ने लगीं, "अपनी ही दुल्हन थी, कहीं भाग तो नहीं चली थी। इतनी क्या पड़ी थी सारी रात जगने की?" तो किशोर ने मुंह नहीं खोला था। पर फिर जब किशोर की बहनों ने दहेज में आए हुए रेफरीजरेटर को बड़े चाव से खोलते हुए किशोर से पूछा था, "आज वीरजी, इसमें कौन-कौनसी चीजें रखें!" तो किशोर का भिंचा हुआ मुंह खुल गया, "इसमें शलजम रख दो।" किशोर ने कहा और एक ओर चला गया।

कितने ही दिन बीत गए। आमों का मौसम आया। घर के सब लोगों ने आमों को दिल भरकर फ्रिज में ठंडा किया, पर किशोर ने आमों को मुंह तक न लगाया। सुबह की चाय के समय अगर मेज पर शहद पड़ा होता, किशोर बिना चाय पिए कमरे से चला जाता। किशोर

ह दोस्त आते, फ्रिज में शराब की बोतलें रखते, पर किशोर ने कभी
नाम चाखने को भी एक घूंट न भरा—और जब एक बार उसकी बहन
खीज उठी, उसकी भाभियां गुस्से हो गईं, और उसके दोस्त उस पर
बरस पड़े, तो सिर्फ एक बार किशोर के मुंह से निकला, "तुम मुझे और
कोई चीज न दिया करो खाने के लिए, बस शलजम दे दिया करो,
शलजम। मैं सिर्फ शलजम खाने के लिए जन्मा हूं।"

फिर गर्मियां आ गईं। किशोर के ससुराल वालों ने किशोर का
और उसकी बीवी का कमरा एअर-कंडीशण्ड करवा दिया। उन्होंने
कहा था कि हमारी गुल्लो को गर्म कमरे में रहने की आदत नहीं।

किशोर जब कारखाने से उठकर, दोपहर का खाना खाने के लिए
घर आता, तो रोज उसकी बीवी उसे ठण्डे कमरे में थोड़ा आराम
करने को कहती। किशोर ने अपने मन में धार लिया था कि वह एक
मर्द नहीं, एक बैल है - वह सारी उम्र चुप रहकर शलजम चरता रहेगा
और आंखों पर पट्टी बांधकर उसी जगह पर घूमता रहेगा, जहां
उसकी बीवी उसे घुमाएगी। इसलिए किशोर ने कभी अपनी बीवी
का कहा नहीं टाला था।

फिर कुछ दिन के बाद किशोर को लगा कि उसके सारे अंग सोते
जा रहे हैं। वह घड़ी-पल के लिए आराम को लेटता तो सारा दिन
पलंग पर पड़ा रहता। अब उसे अमाकड़ी भी याद नहीं आती थी।
उसका लहू ठंडा होता जा रहा था। उसके खयाल सुन्न होते जा रहे
थे। वह बर्फ का एक टुकड़ा बनता जाता था।

किशोर की सेहत की सबको चिन्ता हुई। एक डाक्टर आता तो
एक जाता। बड़ी गर्म दवाइयां किशोर के गले से उतरतीं, वे भी गले
के नीचे उतरते-उतरते बर्फ की गोलियां बन जाती थीं।

फिर एक घटना घट गई। किशोर की ननिहाल से खत आया
कि किशोर को शायद गांव की खुली हवा माफिक आ जाए
उसकी ननिहालवालों ने उसे बुला भेजा। किशोर ने खत
उसके सुन्न अंगों में कोई हरकत न हुई। हां, उस रात किशोर

यह नहीं था कि किशोर ने हाथ-पांव नहीं मारे थे, पर उसके मां बाप की जिद एक तैराक की तरह हाथ में शादी का रस्सा लेकर इस कुएं में उतर पड़ी थी और किशोर को कस-बांधकर इस कुएं में से निकाल लाई थी।

आज विवाह की पहली रात थी और किशोर अमाकड़ी को इस तरह याद कर रहा था जैसे कुएं की जगत पर खड़ा होकर कुएं में झांक रहा हो। अब उसे मालूम था कि अगर वह चाहे भी तो पुन उस कुएं में नहीं गिर सकता था, क्योंकि अब उसकी गर्दन में उसके विवाह का रस्सा बंधा हुआ था। पर फिर भी अभी वह कुएं की जगत से नहीं उतर पा रहा था। शायद इस कुएं का जो पानी उसने पिया था, वह पानी उसकी नाड़ियों में अपना हक मांग रहा था।

रात शायद खत्म होने पर आई थी। हवेली की बत्तियां एक-एक कर बुझने लगी थीं। और किशोर को लगा कि अमाकड़ी के गले में पहनी हुई कुड़ती से कोई सीप के बटनों को एक-एक करके नोच रहा था।

प्रातःकाल जब किशोर की बहनों और भाभियों ने रात के जगने से किशोर की लाल हुई आंखें देखीं, तो वे हंसी से दुहरी होती किशोर को छेड़ने लगीं, "अपनी ही दुल्हन थी, कहीं भाग तो नहीं चली थी। इतनी क्या पड़ी थी सारी रात जगने की?" तो किशोर ने मुंह नहीं खोला था। पर फिर जब किशोर की बहनों ने दहेज में आए हुए रेफरीजरेटर को बड़े चाव से खोलते हुए किशोर से पूछा था, "भाई वीरजी, इसमें कौन-कौनसी चीजें रखें!" तो किशोर का भिंचा हुआ मुंह खुल गया, "इसमें शलजम रख दो।" किशोर ने कहा और एक ओर चला गया।

कितने ही दिन बीत गए। आमों का मौसम आया। घर के सब लोगों ने आमों को दिल भरकर फ्रिज में ठंडा किया, पर किशोर ने आमों को मुंह तक न लगाया। सुबह की चाय के समय अगर मेज पर शहद पड़ा होता, किशोर बिना चाय पिए कमरे से चला जाता। किशोर

के दोस्त आते, फ्रिज में शराब की बोतलें रखते, पर किशोर ने कभी कसम खाने को भी एक घूंट न भरा—और जब एक बार उसकी बहन खीझ उठी, उसकी भाभियां गुस्से हो गईं, और उसके दोस्त उस पर बरस पड़े, तो सिर्फ एक बार किशोर के मुंह से निकला, "तुम मुझे और कोई चीज न दिया करो खाने के लिए, बस शलजम दे दिया करो, शलजम। मैं सिर्फ शलजम खाने के लिए जन्मा हूं।"

फिर गर्मियां आ गईं। किशोर के ससुराल वालों ने किशोर का और उसकी बीवी का कमरा एयर-कंडीशण्ड करवा दिया। उन्होंने कहा था कि हमारी गुल्लो को गर्म कमरे में रहने की आदत नहीं।

किशोर जब कारखाने से उठकर, दोपहर का खाना खाने के लिए घर आता, तो रोज उसकी बीवी उसे ठण्डे कमरे में थोड़ा आराम करने को कहती। किशोर ने अपने मन में धार लिया था कि वह एक मर्द नहीं, एक बैल है - वह सारी उम्र चुप रहकर शलजम चरता रहेगा और आंखों पर पट्टी बांधकर उसी जगह पर घूमता रहेगा, जहां उसकी बीवी उसे घुमाएगी। इसलिए किशोर ने कभी अपनी बीवी का कहा नहीं टाला था।

फिर कुछ दिन के बाद किशोर को लगा कि उसके सारे अंग सोते जा रहे हैं। वह घड़ी-पल के लिए आराम को लेटता तो सारा दिन पलंग पर पड़ा रहता। अब उसे अमाकड़ी भी याद नहीं आती थी। उसका लहू ठंडा होता जा रहा था। उसके खयाल सुन्न होते जा रहे थे। वह बर्फ का एक टुकड़ा बनता जाता था।

किशोर की सेहत की सबको चिन्ता हुई। एक डाक्टर आता तो एक जाता। बड़ी गर्म दवाइयां किशोर के गले से उतरतीं, वे भी गले से नीचे उतरते-उतरते बर्फ की गोलियां बन जाती थीं।

फिर एक घटना घट गई। किशोर की ननिहाल से खत आया कि किशोर को शायद गांव की खुली हवा माफिक आ जाए, और उसकी ननिहालवालों ने उसे बुला भेजा। किशोर ने खत पढ़ा, पर उसके सुन्न अंगों में कोई हरकत न हुई। हां, उस रात किशोर को एक

सपना अवश्य आया। सपने में उसकी खाट आम के पेड़ों के नीचे डाली हुई थी। खाट के पाये के पास एक कोरा घड़ा रखा हुआ था। घड़े पर कांसे का कटोरा औंधा पड़ा था, और अमाकड़ी जब कटोरे में पानी डालकर किशोर को देने लगी, कटोरा उसके हाथ से गिर गया और अमाकड़ी एक कोयला बनकर उसके पास से उड़ गई।

कोयल की कूकों से किशोर की आंख खुल गई। अपने बर्फ-से ठंडे हाथों से जब किशोर ने अपने मुख को टटोला तो गर्म आंसू उसकी आंखों से बह रहे थे।

किशोर घबराकर पलंग पर उठ बैठा, और उसे खयाल आया कि अगर वह इसी घड़ी, इसी पल इस कमरे से न निकला तो मुश्किल से पिघले हुए ये आंसू उसकी हड्डियों की तरह, उसके घुटनों की तरह, और उसके खयालों की तरह जम जाएंगे।—और फिर वह स्टेशन की ओर चल पड़ा। उस ओर चल पड़ा, जिस ओर से कोयल की कूक आ रही थी।

दूसरे दिन दोपहर के समय किशोर जब आमों के बाग में पहुंचा, सचमुच ही उस जगह पर एक खाट डाली हुई थी जो जगह पूरे तीन साल से उसके लिए सुरक्षित रही थी। किशोर के पैर ठिठक गए। 'जाने आज मेरी जगह इस खाट पर कौन लेटा हुआ है!'

और फिर खाट पर जो कोई लेटा हुआ था, उसने करवट बदली और किशोर के कानों में चूड़ियां खनक उठीं। किशोर ने आगे बढ़कर अमाकड़ी के पांवों को छुआ और जब अमाकड़ी ने चौंककर अपने पैर परे किए तो किशोर ने देखा कि अमाकड़ी अब आम की फांक नहीं थी, आम का छिलका थी। अमाकड़ी अब शहद का छत्ता नहीं थी, शहद की मक्खी थी। और अमाकड़ी अब शराब की सुराही नहीं थी, सुराही का ठीकरा थी।

"किशोर बाबू—" अमाकड़ी ने कोयल की कूक की तरह कहा।

किशोर ने घुटनों के बल बैठ अपना सिर खाट पर रख दिया।

"अब तू यहां किसलिए आया?" अमाकड़ी ने बिलखकर पूछा।

"ठंडी यख दुनिया में मैं जन्मा हूं। [illegible]
आया हूं।" किशोर ने खाट से सिर उठाकर कहा और [illegible]
के हाथ को अपने कांपते हाथ में लेकर कहने लगा, "[illegible]
इन्सान हूं।"

"एक इन्सान, एक मर्द!" अमाकड़ी ने धीरे से कहा।

"एक इन्सान, एक मर्द!" किशोर ने अमाकड़ी के शब्दों को
दुहराया।

"जो मुहब्बत के आसन से उठकर विवाह की वेदी पर जा बैठे-
वह इन्सान होता है? वह मर्द होता है!" और अमाकड़ी ने किशोर
की बांह पर पर एक जानवर की तरह [illegible]
दिए।

किशोर अपनी बांह पर उभरे खून के फूल को देखने लगा और
थकी हुई, टूटी हुई अमाकड़ी तकिये पर सिर रखकर कहने लगी, "यह
अनार का फूल नहीं, यह जहर का फूल है। [illegible]
कहा करता था न, हलकाई बिल्ली···।"

"मुझे सचमुच तुम्हारे हलकाए होंठों का जहर [illegible] है—"

'अमाकड़ी। इस दुनिया में मेरी कोई दवा नहीं।' किशोर ने [illegible]
कर कहा।

"कोई हलका हुआ जानवर काट खाए तो [illegible]
चौदह टीके लगवाते हैं। अभी तो तुमने एक ही टीका [illegible]
अभी तो तुमने एक ही विवाह किया है। [illegible]
ले···"

और अमाकड़ी की आंखें [illegible]।

एक नाविक

सागर के तीर पर लोगों की अपार भीड़ थी। भीड़ में प्रत्येक जाति के लोग थे, प्रत्येक राष्ट्र के लोग और प्रत्येक वंश के लोग।

कई लोग सागर के वक्षःस्थल की ओर देखे चले जा रहे थे जितनी दूर तक भी दृष्टि जा सकती थी, वे उसी ओर ध्यान लगाये खड़े थे। कई लोगों की आंखें भीड़ में ही इस तरह उलझी हुई थीं जैसे उनका सागर से कोई लगाव न हो। कई लोग मक्की के भुने हुए भुट्टे खा रहे थे, कई मूंगफली खा रहे थे, और कई नारियल का पानी पी रहे थे। कुछ बालक अपने नन्हें-नन्हें हाथों से रेत के घर बना रहे थे।

सागर की लहरों पर कुछ झिलमिल करने लगा। कितने ही लोगों के दिल धड़क गये। आकाश के एक कोने ने अपने हाथ में सूरज का प्याला पकड़ा हुआ था और उस प्याले में से बहुत सी लाली सागर के जल में गिर रही थी।

समुद्र को चीरकर आ रही नाव अब स्पष्ट दिखाई देने लगी थी। कई लोगों ने इस ओर ध्यान न दिया, परन्तु कइयों के हाथों से मक्की के भुट्टे छूट गये। मूंगफली हाथों से गिर गयी और नारियल का पानी छलक गया।

लहरें एक साज की तरह चल रही थीं। पतवारों की आवाज उसके साथ ताल देने लगी और फिर नाविक का गीत किनारे की ओर आने लगा।

नाविक का यह गीत कोई जादू करने के स्थान पर चढ़े जादू भी उतार रहा था। सागर के तीर पर खड़े कई दम्पतियों के हाथ एक दूसरे से छूट गये थे। जैसे-जैसे नाविक का स्वर ऊंचा होता गया

नाव किनारे की ओर आती गयी, कई व्यक्तियों की आंखों में बादल छा गये और कइयों की आंखों से बूंदें गिर पड़ीं। बहुत-से लोग ऐसे भी थे जिन्होंने इस ओर देखा भी नहीं था।

नाव को किनारे पर लाकर नाविक ने लोगों को देखा और बुलावा दिया, "है कोई सवारी ?"

नाविक के मुंह का तेज सहन नहीं किया जा रहा था। लोगों ने आंखें नीचे डाल लीं। नाविक सागर के तीर पर अलग बैठकर हुक्का पीने लगा।

सूरज का प्याला उलट गया और सागर ने कुछ ही क्षणों में उसकी सारी लाली डीक लगाकर पी ली। अब सागर रात्रि के अन्धकार को घूंट-घूंट पी रहा था। लोग घरों को चले गये थे।

नाविक ने हुक्का एक ओर रख दिया और उठकर सागर के खाली किनारे को देखा। जल की कोई-कोई ऊंची लहर बड़े प्रबल वेग से आती और रेत पर गिरे भुट्टों के अवशेश और मूंगफली के छिलकों को समेट ले जाती। ऐसा प्रतीत होता वह किनारे की रेत को संवार रही थी। लोगों के पांवों के चिह्न भी मिट रहे थे और शिशु हाथों से बनाये रेत के घर भी।

नाविक ने दूर नारियल के समूहों में बनी हुई एक झोंपड़ी की ओर देखा, झोंपड़ी में दीपक अभी जल रहा था। नाविक धीरे-धीरे अपने पग बढ़ाता हुआ उस झोंपड़ी की ओर बढ़ने लगा।

"जाग रही हो अभी ?" नाविक ने झोंपड़ी के अधखुले दरवाज़े पर दस्तक दी।

'भीतर आ जाओ, मैं तुम्हारी ही प्रतीक्षा कर रही थी।" झोंपड़ी के भीतर से एक नारी की आवाज आई। "बैठ जाओ यहां।" नारी ने फिर कहा और झोंपड़ी के कोने में पड़ी हुई एक चटाई झाड़कर बिछा दी।

"कोई सवारी नहीं मिली !" नाविक ने एक गहरी सांस ली। "मैं कहती हूं कि तुम यह प्रतिदिन का झंझट छोड़ ही क्यों नहीं देते ?

भी तुम्हें सवारी मिली भी है छोड़ो इन सवारियों की बात। यह ताओ नारियल पीओगे ?"

"नारियल पीने ही तो मैं आया हूं।"

"बता कौन-सा लाऊं ? जल वाला, मलाई वाला या गिरी वाला ?"

"आज मेरा मन बहुत उदास है, तुम मुझे तीनों ही पिला दो। पहले खाली जल वाला, फिर मलाई वाला और फिर मोटी गिरी वाला।"

नारी अपने टोकरे में से तीनों नारियल ले आई और बारी-बारी तोड़ती हुई नाविक के हाथों में देती हुई कहने लगी, "कुछ मीठे भी निकले हैं कि नहीं ?"

"बड़े मीठे हैं", नाविक ने कहा और कच्ची गिरी के एक टुकड़े को मोड़कर उसने नारी के हाथ में देते हुए कहा, "लो स्वयं खाकर देखो।"

"यह भी शुक्र है कि तुम घड़ी-पल के लिए इधर आ जाते हो, नहीं तो मैंने ये नारियल के सभी वृक्ष उखाड़ देने थे।"

नाविक मुसकराया और कहने लगा, "तभी कहती हो कि मैं रोज का यह झंझट छोड़ दूं ? नाव लेकर कभी भी इस किनारे की ओर न आऊं तो फिर तुम इस धरती पर ये नारियल के वृक्ष काहे को लगाओगी ?"

"यह तो तुम ठीक कहते हो।" नारी ने एक गहरा निश्वास लें हुए कहा।

"मुझे कोई सवारी नहीं मिलती······कभी-कभी जब मैं बहुत उदास हो जाता हूं, तो मेरा दिल चाहता है कि तुम्हें अपनी नाव में बिठाकर ले जाऊं······"

"यह बात तो तुमने पहले भी कई बार कही है, परन्तु यह कोई तेरे बस की बात थोड़े ही है······" नारी ने अपने दुपट्टे की कन्नी से अपनी आंखें पोंछीं।

"यही तो दुःख की बात है कि यह मेरे वस की बात नहीं!"
ाविक ने एक लम्बा सांस लिया।

"यह कैसा नियम बनाया है प्रकृति ने।"

"नारी के हृदय में एक पुरुष के लिए स्थायी प्रतीक्षा और पुरुष
ः हृदय में एक नारी के लिए स्थायी आकर्षण। कौन तोड़े प्रकृति के
न नियम को!"

"परन्तु नारी को कभी वह मर्द न मिला जिसके साथ उसकी भट-
न समाप्त हो जाती, मर्द को कभी भी वह नारी न मिली जिससे
सकी तृष्णा खड़ी हो जाती।"

"मन का यह इतना बड़ा सागर किसी से पार नहीं हो पाता।
सलिए तो मैंने यह नाव बनाई है···परन्तु सागर के उस ओर
जिन्दगी की सारी वादी खाली पड़ी है। उस ओर ले जाने के लिए
मुझे कोई सवारी ही नहीं मिल पाती···।"

"और इस ओर की दुनिया इतनी बढ़ती आ रही है कि रहने को
र नहीं, खाने को रोटी नहीं। निराश्रितों की भांति लोग पैदा होते हैं
और आश्रितों की भांति रहते हैं।"

"इस पर भी सभी रहते इधर ही हैं, मैं तो प्रतिदिन नाव लेकर
ाता हूं।"

"तेरा भाड़ा कौन दे? तुम तो समूचे दिल का भाड़ा मांगते
ो···यह भी कोई चुका दे, कइयों के पास दिल है, परन्तु तेरी शर्त
भी बड़ी विचित्र है। तेरी नाव में न कोई नारी अकेली जा सकती है
और न कोई पुरुष अकेला जा सकता है। नारी के पास भी समूचा
दिल हो, और फिर वे दोनों सिक्के एक-दूसरे के सिर से वार कर तुम्हें
दे दें तो वे तेरी नाव में बैठ सकते हैं···।"

"मैंने तो तुम्हें बताया है कि इसमें मेरा दोष कुछ भी नहीं। यह
कुदरत का नियम है।·····नहीं तो मैं तुम अकेली को ही इस नाव में
बैठाकर ले जाता। उस ओर ज़िन्दगी की वादी में तुमने बहुत सुन्दर
घर बनाना था।"

"तुम मेरे दुःखों का उल्लेख क्यों करते हो ? अब मेरी आयु ढलती जा रही है। अब तो मेरी स्मृतियों के घाव भी भर गये हैं।"

"पगली, घाव ही तो भरते नहीं ! तुम क्या सोचती हो कि यह घाव केवल जवानी के शरीर पर ही लगते हैं ? यह पीड़ा देह की नहीं पगली, यह आत्मा का दर्द है। और आत्मा की आयु कभी नहीं ढलती।"

नारी ने अपना सिर नीचे कर लिया। ऐसा प्रतीत हुआ जैसे उसकी आत्मा पर लगे सभी घाव रिसने लगे हों।

"तुम्हें वह दिन भूल गया, जब एक मर्द तुम्हारा हाथ पकड़कर मेरी नाव में बैठने के लिए आया था। और···फिर सागर के किनारे पर खड़ी युवतियों को देखकर वह विचलित हो गया, पर वह अपने-आप में नहीं रहा। वह मेरा भाड़ा न चुका सका······उसने तेरा हाथ छोड़ दिया और वह सागर के किनारे पर एकत्रित भीड़ में कहीं खो गया।"

"बस करो, बस करो···मेरे घावों को मत कुरेदो।" और वह नारी रोने लग गई।

"अच्छा, अब चुप हो जाओ। मैं उसकी कोई बात नहीं करूंगा··· अच्छा सुनाओ तुम्हारे नगर का क्या हाल है ? तुम्हारे नगर को दुनिया कहकर ही तो पुकारते हैं न ?"

"मेरे नगर का हाल तुमसे कुछ छिपा थोड़ा ही है !" नारी ने सिसकियां भरते हुए कहा।

"मैं नगर में कभी नहीं गया। यहीं तट पर से ही वापिस हो जाता हूं। मर्द और औरतें कैसे रहते हैं आपस में ?"

"औरतें संसार की आंधियों से अपनी रक्षा करने के लिए घर का सहारा चाहती हैं। मर्दों को दिन-रात की गुलामी करने वाला नारी से अच्छा कोई गुलाम नहीं मिल सकता। अतः रोटी-कपड़ा देकर मर्द यह सौदा कर लेते हैं। इस सौदे को विवाह कहते हैं।"

"इस विवाह से उनकी सारी आयु सन्तुष्ट रहती है ?"

"सन्तुष्ट काहे को रहती है, विक्षिप्त रहती है। कभी-कभी अन्धेरे-उजाले में कोई मर्द कुछ समय के लिए किसी की औरत को चुरा लेता है, और कभी कोई औरत घड़ी-भर के लिए किसी का मर्द छीन लेती है।"

"कहते हैं अब तुम्हारे नगर में बड़ी सुन्दर-सुन्दर इमारतें बन गई हैं, यहां लोग मिलकर बैठते हैं। खूब हंसते हैं, नाचते और गाते हैं।"

"तुम्हें तो मालूम है कि पहले-पहल इस सागर का जल मीठा होता था। फिर लोगों ने अपनी जूठी कटोरियां इसमें डालनी आरम्भ कर दीं। सागर का पानी खारा हो गया। अब लोग चावल और फलों को तपाकर कुछ पानी-सा बना लेते हैं। उस पानी में पता नहीं क्या होता है, लोग पीते हैं और घड़ी-भर के लिए जोर-जोर से हंसने लग जाते हैं। गाने भी लग जाते हैं और नाचने भी लग जाते हैं। फिर कुछ क्षणों के पश्चात् उस पानी का जादू उतर जाता है और उनका रंग पीला पड़ जाता है। वे चुप हो बैठ जाते हैं।"

"लोगों और शासकों के परस्पर सम्बन्ध कैसे हैं?"

"शासन की कुर्सी पता नहीं किस लकड़ी की बनी हुई होती है, प्रायः जो भी व्यक्ति उस पर बैठता है उस पर मादकता छा जाती है।"

"लोग परिश्रम कितना करते हैं?"

"कई लोग तो कड़ा परिश्रम करते हैं, परन्तु कई ऐसे भी हैं कि हाथ भी नहीं हिलाते। जो लोग हाथ भी नहीं हिलाते उन्हें तरीका मालूम है, जिससे दूसरों के परिश्रम का सारा मूल्य वे स्वयं प्राप्त कर लेते हैं।"

"न्याय नहीं है तुम्हारे नगर में?"

"कहते हैं लोगों ने उस पर विद्रोह का आरोप लगाकर उसे अपने नगर से निकाल दिया है।"

"तो अब न्याय कहां रहता है।"

"कहीं लुक-छिपकर किसी के दिल में रहता है। अब वह अदालतों

में नहीं रहता।"

"सुना है लोगों ने कई नयी-नयी चीजों का आविष्कार किया है?"

"जैसे किसी अनजान बालक के हाथ में छुरी आ जाये तो वह उससे कुछ निर्माण करने के स्थान पर जो भी हाथ में आये उनको तोड़ता-फोड़ता ही जाता है।"

"और क्या पूछूं तुमसे ? जो कुछ पूछा है, वह ही बहुत है।"

"कुछ न पूछो। पूछो भी तब जब तुम्हें मालूम न हो। तुम सब कुछ जानते हो, तुम बड़े चालाक हो!"

"हां सच, तुम्हारे नगर में लेखक भी तो होंगे ?"

"हां, हैं तो, परन्तु वे अपनी बात बहुत जोर से नहीं कह सकते, ऐसा हो तो लोग उन्हें नगर से निकाल दें। चिह्नों और संकेतों से वे जीवन की वादी की बातें करते हैं, वे मन के सागर की बातें भी करते हैं और तुम्हारी बातें भी करते हैं। तुम नाव के खेवट हो न ?"

"मेरा नाम उन्हें पता है ?"

"तुम्हारा नाम कोई छिपा हुआ थोड़ा है। सब जानते हैं कि तुम्हारा नाम स्वप्न है।"

नाविक ने लम्बा उच्छ्वास लेते हुए कहा, "तो वे कभी मेरी नाव पर चढ़कर सागर को पार क्यों नहीं कर लेते ?"

"तेरी शर्त को पूरा करना उनकी क्षमता के बाहर की बात है!" नारी ने ठंडी आह भरते हुए कहा, "तन के जेब में कइयों के पास 'मन' का भाड़ा है देने के लिए, पर उन्हें उनका साथ नहीं मिलता। तेरे गीत को उन्होंने कई बार गाया है, परन्तु उनके साथ उस गीत का हुंकारा नहीं भरते।"

नाविक ने अपना सिर नीचा कर लिया।

"एक बात पूछूं ?" नारी ने धीमी-सी आवाज में पूछा।

"पूछो।"

"उसका क्या हाल है ? तुमने उसे कभी देखा होगा ?"

"किसको ?"

"मज़ाक क्यों करते हो ? जो एक दिन मेरा हाथ पकड़कर मुझे ्हारी नाव में विठाने के लिए लाया था।"

"तुम अब क्यों उसका हाल पूछती हो ?"

"ऐसे ही।"

"तुम नारियल बेचती हो, वह चाय बेचता है।"

"कोई नारी उसके पास होगी ?"

"हां, बहुत आयीं और बहुत गयीं।"

"वह किसी का हाथ पकड़कर तुम्हारी नाव में क्यों नहीं चढ़ा।"

"अब उसकी जेब में मुझे देने के लिए भाड़ा कहां !"

नारी की-आंखें भर आईं।

"मैं अब जाऊं ?" नाविक ने पूछा।

"जैसे तुम्हारी इच्छा !"

"मेरी औरत मेरी प्रतीक्षा कर रही होगी। मेरी कल्पना, मेरी र कल्पना..." और नाविक उठ बैठा।

नारी ने अपनी झोंपड़ी का द्वार बन्द कर लिया। दीपक बुझा । बाहर सागर की लहरें एक साज़ की तरह बज रही थीं। पत- ं की आवाज़ उसे ताल दे रही थी, और नाविक का गीत किनारे र जा रहा था।

□ □ □

जोगासिंह का चौबारा

पटियाला में चौक अनारदाना से फूल सिनेमा की ओर जाएं तो रास्ते में एक तंग-सी अनाज मंडी में से होकर गुजरना पड़ता है। फिर नाला पार करके लकड़ी की दुकानें हैं—शहतीरों और चौगाठों की दुकानें। गाड़ियों, रथों आदि के पहिये भी वहीं बनते हैं, लुहारी ठक-ठक एक ही सांस में कानों में पड़ती है। वहीं एक टूटा सा गेट है—कंवर नौनिहालसिंह पर गिरती ड्योढ़ी की तरह। और लगता है कि शायद यह गेट भी वहां से गुजरने वालों के सिर पर गिरा कि गिरा। लेकिन इस भय को फांद जाएं, तो उससे आगे एक बहुत बड़ा डेरा मिलता है—जिसमें एक ओर संत लोग रहते हैं तथा एक ओर लगभग तीन सौ भैंसें और उनके ग्वाले। दोधी लोग। वहीं नानकशाही ईंटों में घिरा एक इमली का वृक्ष भी है—चार सौ साल पुराना वृक्ष। इसलिए इस डेरे को इमली वाला डेरा कहते हैं।

ऊपर, कभी बहुत से चौबारे होते होंगे, लेकिन अब सिर्फ एक ही शेष है, बाकी सब ढह चुके हैं। यह चौबारा खड़ा है, मानों एक जिद्द बांधकर खड़ा हो। और इसी चौबारे में जोगासिंह रहता है।

इमली का पेड़ चार सौ साल पुराना है, और जोगासिंह मानो वादी समय का आदमी?

आधे चौबारे में हरिद्वारी चटाइयां बिछी हैं, ऊपर अकालियों के समय की दरी बिछी है, और परदादा के समय के चार खेस और चार रजाइयां पड़ी हैं, जिनमें एक शहनशाही बिस्तर पर जोगासिंह सोया करता है, और शेष तीनों में उसके मेहमान।

चौबारे में दो अलमारियां भी हैं पुस्तकों से भरी हुई, जिनमें

र एक कविता भी लिखी—'आज एक दीपक बुझ गया।' यह कविता मंचों पर पढ़ी भी थी। लेकिन कुछ वर्षों बाद जब मैं कश्मीर ा, भाई वीरसिंह के 'मटक हुलारे' मुझे कंठस्थ थे, लेकिन कश्मीर सुन्दरता देखकर मुझे मटक हुलारे भूल गये। —लगा, उसने ृति को टीन के डिब्बे में बन्द किया था और मैंने घर आकर उसका त्र उलटा कर दिया। उन्हीं दिनों मैंने पूर्णसिंह को भी पढ़ा था— वे कीकरों को बांहों में भरता था, घास के तिनकों को चूम-चूम रोया करता था—शायर तो वही था, भाई वीरसिंह नहीं।"

जोगासिंह के तीनों दोस्त रजाइयों में ही उठ बैठे और पूछने ा—'फिर दूसरा चित्र ?'

जोगासिंह अपनी धारीदार कमीज की धारियों की तरह गिनकर ाने लगा—'दूसरा चित्र मैंने गुरुबख्श सिंह का फ्रेम करवाया था, मैंने उनकी एक कहानी में से एक वाक्य कंठस्थ किया हुआ था, उसके जूठे गिलास में से सुच्चा पानी घूंट-घूंट पी गया।'

मैं सोचता था—जब मैं किसी लड़की को प्रेम पत्र लिखूंगा उसमें वाक्य भी लिखूंगा। लेकिन जैसे ही मैं बड़ा हुआ, मुझे इस बात समझ दूसरी तरह ही आई —कि गुरुबख्श सिंह ने जूठे को जूठा ने के कारण नहीं स्वीकारा था, पहले जूठे शब्द को शुद्ध किया था को सच्चा सुच्चा बनाया था, और फिर उसे मुंह लगाया था। हिम्मत भला जूठे पानी को पीने की क्यों न हुई ?

यह तो सरासर कट्टर पंथियों वाली बात थी । और मैंने उसका त्र उल्टा लटका दिया। तीसरा चित्र मैंने संतसिंह सेखों का ा था। जब सीधा लटकाया था तो लगा था कि वह मार्क्स लोचक है, लेकिन जिस दिन उसने घोमती—को महान क दिन किया—'मुझे लगा कि जाट ऊंट पटांग बघारने लगा है।'

मैंने उसी दिन उसका चित्र उलटा दिया था।—और चौथा—

'यहां एक चित्र जसवंतसिंह कंवल का लगा हुआ है'—उसके स्तों में से एक ने उसे याद दिलाया।

समय का आदमी है—लेकिन दिखने को इमली के ताजा पत्त
तरह वह युवा है और गोरे चिट्टे रंग वाला भी। कभी तो
आदमी की तरह जो भी कपड़े हाथ लगे, पहन लिये, लेकिन
गहरे रंग की कलफ लगी पगड़ी बांधकर उसके साथ हल्के
कमीज पहन कर बड़ा सजा-संवरा हो जाता है।

एक रात—उसकी हरिद्वारी चटाइयों पर अकालियों के
की दरी—उसके जेल के समय के तीन मार्क्सवादी मित्रों ने रोव
थी कि रात में देशी शराब गटकते व तले हुये आलू खाते समय
चौथाई रात बीत गई। और फिर परदादा के समय की रजाः
भी उन्हें नींद नहीं आ रही थी कि उनमें से एक ने मेहरांवों
चित्रों का प्रसंग उठाया—जोगासिंह! आज तो भेद वाली
सच-सच बतादो कि यह चित्र तुमने क्यों लगाये हैं। और तुम्हें
साथ प्रेम ही है तो इन्हें सीधा करके लटकाओ। या फिर उन्हें
की कैद से छुड़ाकर फाड़ फेंको।

...स, यही तो बात है—दीवार पर चित्र लटकाने भी जरू
... अब देखने में भी दिलचस्पी नहीं।"—जोगासिंह न
...टों की तरह हल्की सी हंसी हंसा— और फिर रात
शराब की तरह मालटे के रंग जैसा होकर कहने लगा—
थे तो प्यार से ही लगाये थे चित्र। तब मैं नवीं-दसवीं में
करता था। फिर मैं बड़ा हो गया और साल-दर-साल लगने लग
मुझे पहले चित्र के साथ प्यार नहीं रहा था। फिर दूसरे के
नहीं, फिर तीसरे से—और इसी तरह एक-एक को सीधे से
करता रहा। — ये नौ चित्र मेरे नौ सालों का हिसाब है।

पहला चित्र तो भाई वीरसिंह का, मैंने सीधा करके देखा
जोगासिंह के दोस्तों में से एक ने कहा।

"हां! यह चित्र मैंने सन् १९५९ में लगाया था, जब भाई वी
सिंह के देहांत की खबर सुनी थी। तब मैं अभी नया-नया ही लि
लगा था। उनकी मृत्यु की खबर सुनकर उनका चित्र भी लगा

समय का आदमी है—लेकिन दिखने को इमली के ताजा पत्तों की तरह वह युवा है और गोरे चिट्टे रंग वाला भी। कभी तो दबंग आदमी की तरह जो भी कपड़े हाथ लगे, पहन लिये, लेकिन कभी गहरे रंग की कलफ लगी पगड़ी बांधकर उसके साथ हल्के रंग की कमीज पहन कर बड़ा सजा-संवरा हो जाता है।

एक रात—उसकी हरिद्वारी चटाइयों पर अकालियों के समय की दरी—उसके जेल के समय के तीन मार्क्सवादी मित्रों ने रोक रखी थी कि रात में देशी शराब गटकते व तले हुये आलू खाते समय तीन चौथाई रात बीत गई। और फिर परदादा के समय की रजाइयों में भी उन्हें नींद नहीं आ रही थी कि उनमें से एक ने मेहराबों में टंगे चित्रों का प्रसंग उठाया—जोगासिंह! आज तो भेद वाली बात सच-सच बतादो कि यह चित्र तुमने क्यों लगाये हैं। और तुम्हें इनके साथ प्रेम ही है तो इन्हें सीधा करके लटकाओ। या फिर उन्हें शीशे की कैद से छुड़ाकर फाड़ फेंको।

"बस, यही तो बात है—दीवार पर चित्र लटकाने भी जरूरी हैं और उन्हें अब देखने में भी दिलचस्पी नहीं।"—जोगासिंह नानकशाही ईंटों की तरह हल्की सी हंसी हंसा— और फिर रात वाली देशी शराब की तरह मालटे के रंग जैसा होकर कहने लगा—"मैंने लगाये थे तो प्यार से ही लगाये थे चित्र। तब मैं नवीं-दसवीं में पढ़ा करता था। फिर मैं बड़ा हो गया और साल-दर-साल लगने लगा कि मुझे पहले चित्र के साथ प्यार नहीं रहा था। फिर दूसरे के साथ नहीं, फिर तीसरे से—और इसी तरह एक-एक को सीधे से उल्टा करता रहा। — ये नौ चित्र मेरे नौ सालों का हिसाब है।

पहला चित्र तो भाई वीरसिंह का, मैंने सीधा करके देखा है, जोगासिंह के दोस्तों में से एक ने कहा।

"हां! यह चित्र मैंने सन् १६५६ में लगाया था, जब भाई वीरसिंह के देहांत की खबर सुनी थी। तब मैं अभी नया-नया ही लिखने लगा था। उनकी मृत्यु की खबर सुनकर उनका चित्र भी लगाया

ौर एक कविता भी लिखी—'आज एक दीपक बुझ गया।' यह कविता ने मंचों पर पढ़ी भी थी। लेकिन कुछ वर्षों बाद जब मैं कश्मीर या, भाई वीरसिंह के 'मटक हुलारे' मुझे कंठस्थ थे, लेकिन कश्मीर ी सुन्दरता देखकर मुझे मटक हुलारे भूल गये। —लगा, उसने कृति को टीन के डिब्बे में बन्द किया था और मैंने घर आकर उसका चित्र उलटा कर दिया। उन्हीं दिनों मैंने पूर्णसिंह को भी पढ़ा था—से वे कीकरों को बांहों में भरता था, घास के तिनकों को चूम-चूम र रोया करता था—शायर तो वही था, भाई वीरसिंह नहीं।"

जोगासिंह के तीनों दोस्त रजाइयों में ही उठ बैठे और पूछने गे—'फिर दूसरा चित्र ?'

जोगासिंह अपनी धारीदार कमीज की धारियों की तरह गिनकर ताने लगा—'दूसरा चित्र मैंने गुरुबख्श सिंह का फ्रेम करवाया था, ब मैंने उनकी एक कहानी में से एक वाक्य कंठस्थ किया हुआ था, उसके जूठे गिलास में से सुच्चा पानी घूंट-घूंट पी गया।'

मैं सोचता था—जब मैं किसी लड़की को प्रेम पत्र लिखूंगा उसमें ह वाक्य भी लिखूंगा। लेकिन जैसे ही मैं बड़ा हुआ, मुझे इस बात ी समझ दूसरी तरह ही आई —कि गुरुबख्श सिंह ने जूठे को जूठा ने के कारण नहीं स्वीकारा था, पहले जूठे शब्द को शुद्ध किया था सको सच्चा सुच्चा बनाया था, और फिर उसे मुंह लगाया था। उस ी हिम्मत भला जूठे पानी को पीने की क्यों न हुई ?

यह तो सरासर कट्टर पंथियों वाली बात थी। और मैंने उसका ित्र उल्टा लटका दिया। तीसरा चित्र मैंने संतसिंह सेखों का उल-ाया था। जब सीधा लटकाया था तो लगा था कि वह मार्क्सवादी ालोचक है, लेकिन जिस दिन उसने श्रीमती—को महान कवि ोषित किया—'मुझे लगा कि जाट ऊंट पटांग बघारने लगा है।'

मैंने उसी दिन उसका चित्र उलटा दिया था।—और चौथा—

'वहां एक चित्र जसवंतसिंह कंवल का लगा हुआ है'—उसके ोस्तों में से एक ने उसे याद दिलाया।

'हां चौथी बार मैंने उसी कंवल का चित्र उल्टा लटकाया था। पहले लगा करता था, बढ़िया आंचलिक भाषा लिखता है, और उपन्यासों में कामरेड पात्र भी डालता है। उसको मिलकर भी देखा कि रहन-सहन आम गांव वालों जैसा ही था उसका, जो अच्छा लगा था। लेकिन जब मैं चार अक्षर पढ़ गया तो लगने लगा कि उसके उपन्यास तो दसवीं फेल लड़कों को हीं अच्छे लग सकते हैं—और मैंने उसके चित्र का मुंह दीवार की तरफ कर दिया। और इसी तरह देवेन्द्र सत्यार्थी के चित्र का चेहरा भी एक दिन दूसरी ओर लगा दिया। मैंने जब उसकी कहानी 'सांप और आदमी' पढ़ी थी तो उसके चित्र खरीद लाया था। बाद में जब मैं मिला तो उसने मुझे बताया कि वह १९४७ के दिनों पर एक उपन्यास लिख रहा है—'सतगुरु तुम्हारी कसम'। —मुझे उसकी बातों ने बहुत प्रभावित किया लेकिन फिर उसकी 'लक टुणूं-टुणूं' पढ़ी तो कुछ भी समझ नहीं आया। लगता था सभी चैंपियों वाला प्रोग्राम है। कई पंक्तियां तो बहुत बढ़िया हैं, लेकिन सब मिलाकर कुछ भी नहीं बनता। एक बार उसने कहीं भाषण दिया और कहा अभी मैं छोटा-सा ही था, जब मेरे दादा मर रहे थे और उनका सिर मेरी रानों पर पड़ा था। मुझे अब भी लगता है कि दादा मरा नहीं और उनका सिर मेरी रानों पर पड़ा हुआ है।'' यह परम्परा और व्यक्ति के सम्बन्ध के बारे में उसने कहा था। और मुझे उस दिन वह फिर अच्छा लगा। लेकिन फिर जब उसका 'सूई बाजार' पढ़ा तो लगा—उसका दादा मर चुका था और उसकी रानों पर पड़ी दादा की लाश सूख रही थी। इसलिये उस रोज उसका चित्र मैंने उल्टा लटका दिया।''

''यह तो बात हुई न जोगासिंह ! हम तुम्हें वैसे ही तो नहीं अपना गुरु मानते। हर प्रस्ताव में तेरी राय लेने आते हैं।'' जोगा सिंह के मित्रों में से एक इसी क्षण जैसे उसका शिष्य होने की बाट जोहता था।

जोगा सिंह की दाढ़ी का काला रंग, उसके गोरे चेहरे पर अधिक

गिनने लगा। उसके नाक की धार अधिक तीखी लगने लगी। वह मुस्करा कर कहने लगा—"फिर हरिभजन सिंह बढ़िया कवि लगता था। जब लिखा—"चाहता हूं—कि लगे न मेरी लाश किनारे—" मैंने उसका उसका चित्र दीवार पर लगा लिया। फिर उसने 'समालोचन' लिखनी शुरू की तो मैंने उसके कथनों को उसकी शायरी पर प्रतिपादित किया, —अर्थ ही नहीं उभर रहे थे। उसके अहं के पत्थर ने उसकी नौका पलट दी। और उसका चित्र भी पलटी हुई नौका की तरह ही मैंने पलट दिया। मोहन सिंह का चित्र मैंने देर से दीवार पर लगा रखा था। तब से, जब उसने 'ईश्वर' और 'नूरजहां' जैसी कविताएं लिखी थीं। उसकी कविता 'सवेरा' मैं कंठस्थ करके लोगों को सुनाता रहा, जिसमें पूर्व की ग्वालिन दूध बिलोने बैठती है—लेकिन बाद में जब वह 'ननकायण' में सखियां लिखने लगा और तुकें मिला मिला कर उसने रत्नों के ढेर लगा दिये, तब एक दिन क्रोध में मैंने उसका चित्र भी उलटा दिया।"

यह तो हो गया आठ चित्रों का इतिहास! जोगा सिंह के दोस्तों में से एक ने उंगलियों पर गिन कर हिसाब लगाया और फिर कहा, 'बाहर दीवार पर नौ चित्र गिने थे। एक शायद करतार सिंह दुग्गल का था।"

'न, न। उसका चित्र तो दीवार पर मैंने कभी लगाया ही नहीं। वैसे, पूरे नौ हैं—नौवां चित्र अमृता प्रीतम का है। उसका उपन्यास 'पिंजर' पढ़कर मैंने दीवार पर उसका चित्र टांगा था, फिर कविताएं भी पढ़ी थीं, "हुस्न इश्क दियां गल्लां वे मुंडिया वेहले वेले दियां गल्लां" और 'हक जिन्हां दे आपणे, आपे लैणगे खोह'। और फिर जब उसने 'मैं तवारीख हां हिन्द दी' लिखी और लिखा "तुसन भूखा रोटिये, यार भूखा गोरिये, काहदा है रूप निजाम दा, फल कोई लगदे नहीं।" मैंने सोचा—यह बढ़िया शायरा है। लेकिन बाद में जब उसने १९६८ की दुर्घटना के समय चेकोस्लोवाकिया पर कविताएं लिखीं तो मैंने उसी दिन उसका चित्र अपनी दीवार पर उल्टा लटका दिया।"

"बहुत खूब जोगा सिंह।" जोगे के दोस्तों को रात वाली शराब जैसे फिर एक बार चढ़ गई। उसकी बातों ने उनकी आंखों में लाल डोरियां खींच दी थी।

जोगा सिंह जैसे घोड़े पर सवार, तना हुआ और खुश था। दोस्तों में से एक को आगे की सूझी। कहने लगा—"अब तुम नये कवियों के चित्र दीवार पर लगाओ। ये रोमांसवादी, आदर्शवादी इसी तरह उल्टे रहने दो। प्रयोगवादी भी जैसे आये, उसी तरह गये। चले गये। अब तो तुम सिद्धान्तवादियों को अपनी दीवार पर सजाओ।"

जोगा सिंह के सरपट भागते घोड़े को मानों सामने एक दीवार नज़र आ गई हो। घोड़े की लगाम खींच कर कहने लगा, "नही यार, अब किसी का चित्र नही लटकाना। फिर चार दिनों बाद उसे भी उल्टा करता फिरूंगा। मैं अपनी दीवार पर पहले ही कितने कील तो ठोक चुका हूं!"

□ □ □

गए थे, अपनी-अपनी हैसियत के मुताबिक। मैं भी बच्चों के सा
दौड़ता हुआ देखने के लिए चला गया था, और जाकर गांव
पटेल की गोद में बैठ गया था। मेरे दादा जी दतिया स्टेट
जंगलात के अफसर थे। असल में मानसिंह जब डाकू नहीं ब
था, मेरी बुआ के ब्याह में आया था। यह कोई चालीस बर
पुरानी बात है। और मुझे तब पटेल की गोदी में बैठे देख क
मानसिंह ने पूछा, "यह कौन लड़का है ?" पटेल ने बताया, "य
सीताराम का पोता है, जंगलात के अफसर का।" मानसिंह
मुझे अपने पास बुलाया। मैं डर का मारा पटेल की गोदी
सिमट गया। बब्बा ने किसी के हाथ दो रुपये भेजे थे, यह उस
मेरी हथेली पर रख दिए।

प्रश्न—डाकू मानसिंह को गांव के लोग बब्बा पुकारते थे ? चाहे ड
से चाहे विश्वास से, लेकिन ऐसा लगता है, कि लोगों ने उस
रिश्ता जोड़ लिया था।

उत्तर—सारे डाकू अपने सरदार को मुखिया कहते थे, पर मानसि
के साथी उसे दाऊ कह कर पुकारते थे, जैसे बड़े भाई को पुका
जाता है, और लोग उसे बब्बा कहते थे। एक और मेरी आंख
देखी बात है। जिस समय लोग नजराने दे रहे थे, एक ब्राह्म
ने आगे बढ़ कर कुछ रुपये मानसिंह की नजर किए, पर मान
सिंह ने उस ब्राह्मण के पांव छू कर रुपये वापस कर दिए। कह
"बस, आशीर्वाद दीजिए !" असल में मानसिंह ब्राह्मणों औ
औरतों की बड़ी इज्जत करता था।

प्रश्न—मैंने सुना है कि जिन डाकुओं की पृष्ठभूमि बागियों की थ
उनका अपने ढंग का एक शिष्टाचार भी था। कहते हैं डा
लाखनसिंह के भतीजे ने एक लड़की के साथ कुछ ज्यादती क
थी, तो लाखनसिंह ने अपने भतीजे को पेड़ से बांध कर गोल
मार दी थी। औरत के साथ ज्यादती को और देवी-देवता
अपमान को वह लोग अपनी गिरावट समझते थे। अच्छा, य

बताइये, यादव जी ! यह लोग पूजा किसकी करते थे ?

यादव—जगदम्बा की। हर डाकू अकसर शक्ति की पूजा करता है। आप हैरान होंगी गब्बरसिंह हमेशा मंगलवार के दिन डाका डालता था उसने जब मदनपुरे में एक ही बार में अट्ठारह आदमियों को भून दिया था, मुखबिरी के शक में, उस दिन भी मंगलवार था।

प्रश्न—वह हनुमान का भक्त रहा होगा ?

यादव—जी हां। और दूसरी बात यह है कि गब्बरसिंह को चमारों से बड़ी चिढ़ थी। सामाजिक परम्परा के अनुसार चमार औरतें पांव में बिछुए और नाक में सोने की पुंगरिया नहीं पहन सकती थीं। शायद आपने देखा हो कि छोटी जात की औरतें इसीलिए पांव की उंगलियों पर फूल-पत्ते गुदवा लेती थीं, नाक में लौंग पहनने की जगह कोई फूल गुदवा लेती थी। पर जब आजादी आई, पुरानी परम्पराएं टूटने लगीं, तो गब्बरसिंह चिढ़ गया। वह जब भी कहीं ऐसा देखता, वह औरत के पांव की उंगलियां काट देता था।

प्रश्न—और चमार मर्दों के साथ कैसा व्यवहार करता था ?

यादव—उसे एक बार एक मूर्त्ति मिल गई। मूर्त्ति वाली देवी की नाक, न जाने किस तरह थोड़ी सी टूटी हुई थी। उसने मूर्त्ति को मिट्टी में से उठा कर रखा, सजाया, और प्रण किया कि नकटी देवी की खातिर वह चमारों की नाकें काट कर सवा सेर वजन की नाकें देवी के आगे चढ़ाएगा। पर उसकी यह हसरत पूरी नहीं हुई थी कि वह मर गया। आज भी हमारे गांव में सात-आठ व्यक्ति हैं—जिन्दा हैं—जिनकी नाकें जख्मी हैं।

प्रश्न—शरीर के बल के साथ-साथ अजीब तरह के खब्त भी इस कारोबार का हिस्सा होते थे।

यादव—चमारों ने अपने आपको कुछ सामाजिक हैसियत देने के लिए एक नई टर्म गढ़ी थी। ठाकुर जाट होते हैं न, चमारों ने जाट

शब्द के आगे व लगाकर अपने आपको जाटव कहना शुरू कर दिया। इससे लोग चिढ़ गये थे। एक डाकू थोड़े समय के लिए हुआ था, श्री लाल, वह भी चमारों से बहुत चिढ़ता था। अगर किसी ने भी अपने आपको जाटव कह दिया तो श्री लाल ने उसका सिर वहां ही उतार दिया।

प्रश्न—पुतली बाई के बारे में बहुत कुछ सुनने में आता है। वह डाकू कैसे बनी थी?

यादव—पुतली बाई असल में तवायफ थी। सुलताना डाकू उसके पास जाया करता था। तवायफ असल में नहीं थी, बेड़िनी थी। तवायफ में कई गुण होते हैं—सुन्दरता भी, नाचने-गाने की कला भी, पर बेड़िनी में शरीर बेचने के सिवा और कोई खूबी नहीं होती। यहां हमारे मुरैना और भिंड के आसपास पूरे के पूरे बेड़िनियों के गांव हैं। पुतली बाई भी बेड़िनी थी, जब पुलिस सुलताना डाकू का पता निकालने के लिए उसे तंग करने लगी, तो वह पेशा छोड़ कर डाकुओं के साथ मिल गई। जनाब, ऐसी निशानेबाज बनी कि क्या कहना! मरसैनी गांव में जब डाका पड़ा, गांव के जिस आदमी के पास बन्दूक थी, डाकुओं ने उसे पकड़ा, और गांव के बाहर—पुतली बाई के पास बिठा कर, बाकी सब लोग गांव को लूटने के लिए चले गये। उस समय पुतली का एक हाथ मारा जा चुका था, बायां हाथ किसी समय पुलिस के साथ लड़ाई में टूट गया था। उस बन्दूक वाले ने पुतली की आंख बचाकर भागने की कोशिश की। पुतली ने कहा, 'देख, एक काम कर। इस नीम के पेड़ पर चढ़ जा, और किसी जगह कोयला लेकर निशान लगा दे, और फिर नीचे उतर आ।" वह आदमी नीम पर चढ़ा, निशान लगाया, और नीचे आ गया। पुतली ने बन्दूक हाथ में लेकर निशाना लगाया—ठीक उसी जगह जहां छोटा-सा कोयले का निशान था, और बोली, "अगर अब भी तू भागना चाहता है तो भाग कर दिखा।" वह आदमी

चुपचाप सारे समय वहीं बैठा रहा, भागने का खयाल उसके दिमाग से जाता रहा।

प्रश्न—मानसिंह के बाद आपको और किसी डाकू से मिलने का अवसर हुआ?

यादव—डाकू मोहरसिंह ने मेरे चाचा को अगवा कर लिया था और छोड़ने के बीस हजार रुपये मांगे थे। हमने दिये थे। और सत्ताइस दिन के बाद मेरे चाचा घर आये थे। अब अप्रैल-मई १९७२ में डाकुओं का आत्मसमर्पण हुआ था मैं नवम्बर में अपने काम से ग्वालियर के सैन्ट्रल जेल गया था, एक डाकू की वकालत के सिलसिले में, तो वहां मैंने मोहरसिंह को देखा। मोहरसिंह को जब किसी ने बताया कि सेंवड़ा का एक वकील आया है, तो उसने मुझसे पूछा, "पटवारी गिरवरसिंह के भाई हो?" मैंने बताया, "भाई नहीं, भतीजा हूं" तो मोहरसिंह ने कहा, "मेरी शनाख्त के लिए गिरवरसिंह को आना है। उससे कह देना शनाख्त के लिए न आवे।" उस समय मालूम हुआ कि जो बीस हजार रुपये भेजे थे, वह मोहरसिंह तक केवल सोलह हजार बन कर पहुंचे थे, चार हजार बिचौलिये ने रख लिए थे।

प्रश्न—बिचौलियों और मुखबिरों का रोल भी अजीब हुआ करता होगा?

यादव—मुख़बिरों को तो डाकू पीढ़ियों तक माफ नहीं करते थे। एक हरभजनसिंह डाकू था, एक रामदयाल। और हमारे पड़ोस के गांव का एक रघुनाथसिंह था, यह डाकुओं का आदमी था। पर पुलिस के कहने में आकर मुख़बिर बन गया। डाकुओं को मालूम हुआ तो उन्होंने रघुनाथसिंह मुखबिर को पकड़ कर सड़क पर उसके हाथ काटे, पैर काटे, नाक काटी। फिर भी जब मुखबिर ने हेकड़ी दिखाई, "इससे ज्यादा और मेरा क्या करोगे?" तो उन्होंने उसका नाजुक अंग भी काट दिया। कटे हुए अंगों पर नमक-मिर्च छिड़क दिया। फिर जब वह तड़प कर उनसे मार

डालने के लिए मिन्नतें करने लगा, तो उन्होंने गोली से मारने से इनकार कर दिया,...आगे होने वाले मुखबिरों को शिक्षा देने के लिए...।

प्रश्न—अच्छा, यह बताइये, यादव जी ! इस लम्बे अर्से में पुलिस ने क्या किया ? क्या पुलिस सचमुच इन हालतों पर काबू नहीं पा सकती थी ?

यादव—असल में बात यह है कि लोग पुलिस पर विश्वास नहीं कर सके। या यह कहूं कि पुलिस लोगों का विश्वास नही जीत सकी। लोगों का मनोविज्ञान यह था कि डाकुओं का भय तो था, पर वह सोचते थे, साथ डाकुओं का देना चाहिए। पुलिस ज्यादा से ज्यादा क्या करेगी, जेल में डाल देगी, और क्या करेगी, और अगर डाकुओं का साथ नहीं दिया तो वह मिनटों में सिर उतार देंगे...।

प्रश्न—सो, इस तरह लोग चक्की के दो पाटों में पिसते रहे...।

यादव—डाकू भी अक्सर पुलिस की वर्दी पहन लेते थे। एक बार तो डाकू हवलदार, थानेदार के बिल्ले लगाकर गांव में आ गये। कहा कि हम बन्दूकों का मुआयना करने आये हैं। एक ने शंका की कि मैं थानेदार को जानता हूं, वह और आदमी है। तो डाकू ने कहा, "मैं खास हैसियत में आया हूं, ऊपर के तबके से भेजा गया हूं, सिर्फ बन्दूकों का मुआयना करने के लिए..." सो बन्दूकें इकट्ठी हो गई, लाइसेंस दिखाये जाने लगे, एक आदमी नम्बर लिखता गया...और उस समय पांच-छः डाकुओं ने घेरा डाल कर बन्दूकें कब्जे में कर लीं। जब हथियार कब्जे में कर लिए, तब पूरे गांव को लूटा, बेधड़क होकर।

प्रश्न—और उनकी बन्दूकें भी जाते हुए ले गये।

यादव—नहीं, जाते समय बन्दूकें दे गये, पर सारे कारतूस ले गये।

प्रश्न—सो पुलिस नम्बर एक, और पुलिस नम्बर दो...और लोग दोनों से निबटते थे...।

यादव—बस यह समझ लो, गांव में जब कड़ाही चढ़ती थी, दो पूरियां निकलतीं तो पहली पूरी डाकुओं को, दूसरी पुलिस को जाती थी। डाकुओं को लोग अन्दर के कमरों में ठहराते थे, पुलिस को बाहर बैठकों में। शादी-ब्याह में चबूतरे पर बैठे हुए डाकू पूरी-कचौरी खा रहे होते, तो नीचे आंगन में या शामियानों में पुलिस खाना खा रही होती थी।…ऊपर से जब पुलिस पर जोर पड़ता था, डाकुओं को पकड़ने या मारने का, तो पुलिस डरती हुई डाकुओं को सन्देसा भिजवा देती थी! फिर जो आदमी डाकू कुछ फालतू समझते थे उसे पुलिस के हाथ में देकर मरवा देते थे…पर ये भी नहीं कि पुलिस सचमुच कभी डाकुओं को मार ही न सकी हो। यहां एक पुलिस सुपरिन्टेन्डेंट मिस्टर डी० सी० दुगरान होते थे। उन्होंने कई मुठभेड़ों में डाकुओं को मारा। मौजूदा पुलिस सुपरिन्टेन्डेन्ट मिस्टर वर्मा भी उसी तरह के बहादुर और ईमानदार आदमी हैं। इन्होंने भी कई मुठभेड़ों में डाकुओं को मारा है।

प्रश्न—अच्छा, यह बताइये, यादव जी! आत्मसमर्पण की इस घटना का कारण सचमुच डाकुओं के दिलों की तबदीली है या…।

यादव—असल में इसमें सबसे बड़ा जतन तहसीलदारसिंह का है और जयप्रकाश नारायण की ओर से दिया गया आश्वासन कि किसी डाकू को फांसी नहीं लगेगी…।

प्रश्न—तहसीलदारसिंह मानसिंह का बेटा?

यादव—जी हां! तहसीलदारसिंह ने विनोबा के समय में आत्म-समर्पण किया था। मैं समाजशास्त्र का जानकार होने के [illegible] सोचता हूं कि इस दृष्टिकोण से कि पन्द्रह-पन्द्रह [illegible] डाकू रहकर जिन्होंने बहुत सारी दौलत इकट्ठी कर [illegible] उस दौलत को बरतने का अवसर नहीं मिल रहा था। [illegible] सुख और चैन चाहते थे, लाखों की दौलत को [illegible] सो, जब हवा बदली, उन्होंने आत्मसमर्पण [illegible]

इससे बड़े डाकुओं को फायदा हुआ है, छोटे, जो कठिनाई से जीवन निर्वाह करते थे, उनकी दशा में अन्तर नहीं पड़ा। उनमें तो उलटे रोष बढ़ गया है। और दूसरी श्रेणी वह है, बिचौलियों की, जो डाकुओं के काम आते थे, उनका सोना-चांदी बेचना, हथियार खरीदना बेचना, या दूसरे कई काम···वह श्रेणी परेशान है···।

प्रश्न—इसलिए कि उनकी बेरोजगारी बढ़ गई है?

यादव—वह लोग और कुछ कर नहीं सकते थे। आजकल ढोर ढंगर चुरा रहे हैं—और अभी-अभी सबूत मिले हैं, सात आठ डाकू खुले जेल में से भाग निकले हैं, पुराने पेशे को फिर से अपनाने के लिए।

प्रश्न—उनके साधारण सामाजिक जीवन में प्रवेश करने का आप क्या उपाय सोचते हैं? सरकार ने उन्हें यह सब दिया, सहूलतें दीं, जमीनें दीं, बच्चों को पढ़ाने ब्याहने का मौका दिया?

यादव—यह सब बड़े डाकुओं को मिला, गिरोह के मुखिया लोगों को, जिससे छोटे और भी भड़क उठे हैं।

प्रश्न—आप इसका क्या उपाय सोचते हैं?

यादव—यह कि इन्हें हीरो न बनाया जाये···जैसे एक फिल्म के हीरो को देखकर आम आदमी भी हीरो बनना चाहता है, पर वह, सफल होने के लिए जतन करता है···डाकू को हीरो बना हुआ देखकर आम आदमी भी इसी तरह सोचता है—काश वह डाकू मोहरसिंह होता···काश वह डाकू तहसीलदारसिंह होता··· और इस बिन्दु पर पहुंच कर सब कुछ गलत हो जाता है···मैं सोचता हूं सरकार उन्हें फिर से आबाद करने के लिए सहूलतें दे, लेकिन उन्हें समाज का नायक न बनाए···यह चावलों की देग नहीं कि एक दाना देखकर जान लिया कि पूरी देग पक गई। मुखिया डाकुओं के बस जाने से पूरा डाकू वर्ग नहीं सुधर जाता।

[इन्हीं दिनों डाकू देवी सिंह से हुई एक मुलाकात]

प्रश्न—देवी सिंह जी ! एक बात मुझे यह बताइये कि आप लोग सब अपने आपको डाकू क्यों नहीं कहते, बागी क्यों कहते हैं ?

देवीसिंह—बाई जी ! लोगों को चाहिए कि डकैती करनेवालों को डाकू ही कहें, पर वह इसे भयानक रूप देने के लिए बाघ से, उनके चीर-फाड़ करके खाने से, बागी कहने लगे थे, शब्द तो डाकू ही होना चाहिए—सरकार का विरोध करने से जो बगावत पैदा होती है। यह शब्द वास्तव में हमारे मामले में नहीं आता।

प्रश्न—देवीसिंह जी ! आपने अपने हाथों से कितने डाके डाले ?

देवीसिंह—कम-से-कम सौ डाके तो डाले होंगे।

प्रश्न—इस जिन्दगी में आप पड़े किस तरह ?

देवीसिंह—हमारे पड़ोस में मिश्र ब्राह्मण रहते थे, उनकी मंगनी के लिए लड़की की मां को पैसा दे दिया गया था। लडकी रामकली थी, मुश्किल से दस बरस की। बाद में लड़की की मां मुकर गई। हम ब्राह्मण के हक में थे। लड़की को पकड़ कर जबर्दस्ती शादी कर दी। इस सिलसिले में हमारे आदमी पकड़े गए। मैं जंगल में भाग गया। वहां डाकुओं के एक गिरोह से मेल हो गया। पीछे लौटने के लिए रास्ता नहीं था, इसलिए उनके साथ हिलमिल गया। उनके साथ मिलकर दो-चार डाके डाले, फिर अपना गिरोह अलग बना लिया।

प्रश्न—आपके गिरोह का क्या नाम था ?

देवीसिंह—मेरे नाम पर, देवीसिंह गैंग।

प्रश्न—डाके मारना कैसा लगता है, देवीसिंह जी ?

देवीसिंह—बड़ा सरल लगता है, वैसे वह जिन्दगी बहुत कड़ी है, पर आदत पड़ गई। डाके मारने में खतरा तो होता है, किसी घर जाएं, लगभग एक घंटा तो लग ही जाता है, गोली चोली भी लग सकती है, इसलिए पकड़ शुरू कर दी थी।

प्रश्न—यानी किसी अमीर घर का आदमी पकड़ लिया, फिरावती

मांगी, और रुपये लेकर वापस कर दिया ?

देवीसिंह—जी हां। हमारा खर्च आम लोगों से बहुत ज्यादा होता है, शुद्ध घी, अच्छी खुराक, फिर हथियार खरीदना, वह भी कई गुना मूल्य पर—इसलिए बहुत रुपये की जरूरत होती है।

प्रश्न—एक बात पूछूं, देवीसिंह जी ! आप लोग हथियार किस तरह और कहां से खरीदते हैं ?

देवीसिंह—यह जो गांवों के कट्टे, बारह बोर और पचफेरा होते हैं, इन के जिनके पास लाइसेंस होते हैं, उनसे इनको हम वैसे ही खींच लेते थे। और पुलिस की मार्क थ्री और गन्ज, अब क्या बताऊं ?—ये चीजें खेतों में तो उगती नहीं—सीधी ऊपर से ही आती हैं, समझ गई न ?

प्रश्न—हां, समझ गई—इसी तरह कारतूस मिल जाते होंगे—आप के अपने गिरोह में, देवीसिंह जी ! कितने आदमी थे ?

देवीसिंह—सात आदमी, और आठवां भगवान ?

प्रश्न—क्या !

देवीसिंह—डाके का माल जितना भी मिलता है, हमारे डाकू अपने दल में बांटते हैं, जैसे मेरे गिरोह में सात आदमी थे, सात हिस्से हो गए। पर आठवां हिस्सेदार भगवान था। उसके लिए माल का एक हिस्सा उसके नाम पर किसी जरूरत-मन्द को दान दे देते थे।

प्रश्न—अजीब बात है, मजबूर भी भगवान के दरवाजे आए, और जाबिर भी—भगवान यह हिसाब किताब कैसे करता होगा ?

देवीसिंह—यह तो पता नहीं जी—पर पुण्य का हिस्सा गरीबों के नाम, धर्म हेतु देना, सब डाकुओं का उसूल था। हम लोग, मुखिया लोग, किसी की बहू बेटी पर हाथ नहीं डालते थे। न हम रास्ता चलते यात्रीको लूटते थे। हममें से कोई यह काम करे, तो हम उसे सजा देते थे। एक बात बताऊं, बाई जी ! गांवों में जब झगड़े होते थे, पंचायत से उसका निपटारा न होता हो, तो

पंचायत वाले हमें बुलाते थे, हम पंचायत में बैठ कर, फैसला देते थे। कोई अमीर आदमी किसी गरीब को तंग करता हो कोई मर्द अपनी औरत को मारता कूटता हो, हम पीड़ितों के हक में फैसला देते थे और किसी की मजाल नहीं होती थी कि हमारे फैसले को रद्द कर दे।

न--मानसिंह से कभी आपकी मुलाकात हुई ?

ीसिंह—हां, दो बार। पुतली से भी जंगल में मिल कर खाना वाना बनता रहा। सरू, मोहरसिंह, लाखनसिंह, सुलतानसिंह, सब मिलते थे।

न—पुतली ने सुल्तान की खातिर यह रास्ता अपनाया था ?

ीसिंह—हां, सुलतान की खातिर! लेकिन एक और डाकू वाबूसिंह था। उसने पुतली को हासिल करने के लिए सुलतान को मार दिया। पुतली उस समय तक औरत के भेप में रहती थी, लेकिन सुलतान का वदला लेने के लिए उसने मर्दाना भेप धारण किया, और वाबूसिंह को मार दिया—

न—सो, मुहब्बत भी किसी रूप में कहीं थी।

ीसिंह—जरूर थी।

न—पर एक बात है, देवीसिंह जी! इस तरह आप देश के जो आदमी वास्तव में गलत थे, उनसे तो नहीं निपटे—गांवों में जो मुकाबले में जो कुछ खाते पीते लोग थे, उन्हें ही आपने लूटा मारा—इससे तो कुछ नहीं वदलता—रिश्वत का रूप और भी बढ़ गया—फैल गया—जहां से आपने हथियार लिए, जहां-जहां से आपने अपनी हिफाजत खरीदी—अच्छा, यह वताइये, अव जिन डाकुओं ने आत्मसमर्पण किया है, क्या वह दिल से सचमुच बदल गए हैं ? उनका दृष्टिकोण जरूर बदल गया है ?

ीसिंह—हां जी, मैं सोचता हूं, हमें परेशानी वहुत थी। हमें जो सरकारी विश्वास दिया गया कि हमें न फांसी होगी, न मार पीट —डाकू की जिन्दगी का कोई ठिकाना नहीं होता—घर के बीवी

बच्चे याद आते हैं—मजबूरियों का भी अन्त नहीं होता—छि
कर रहने को जी करता है—हम भागे थे, तो एक कानून के ड
से—कभी-कभी इतना दौड़ना पड़ता—आटा घी छना हुआ र
जाता—दो-दो दिन भूखे-प्यासे रहना पड़ता—चैन की ज़िन्दगी
बाई जी ! किसे अच्छी नहीं लगती—हमें भी चैन चाहिए।

प्रश्न—ठीक है, देवीसिंह जी ! पर यह तो आप मानते हैं कि आपक
रास्ता ताकत से नहीं कमजोरी से पैदा हुआ रास्ता है। जि
काम के लिए अंधेरे का सहारा लेना पड़े वह खुद अपने आप
कमजोरी होता है—उजाले की ताकत से रहित।

देवीसिंह—हां जी, यह तो ठीक है।

[इसी समय फिफ्थ बटैलियन मुरैना के कम्पनी कमाण्डर अत
सिंह से हुई एक मुलाकात]

प्रश्न—अतरसिंह जी, सुना है, डाकुओं ने जब आत्मसमर्पण किया थ
उस समय उन्होंने पूछा था, "भई, अतरसिंह कौन है, उसे
दिखा दो।"

अतरसिंह—हां जी, माधोसिंह डाकू कहने लगा—'आओ भाई, अ
तो हमारे पास बैठ कर चाय पियो, अब तो हम डाकू नहीं हैं
उस समय मैंने मक्खन, माधो सिंह, मोहर सिंह के साथ ग्वालिय
के हस्पताल में बैठ कर चाय पी, बातचीत की। वह लोग कह
लगे, "अतरसिंह, जिस समय तुम स ग्रूप बनाकर हमें ढूंढ़ र
थे।"

प्रश्न—स ग्रुप का क्या मतलब ?

अतरसिंह—हम पुलिस वालों ने तीन-चार बरस डकैतों का रूप धार
कर के उन्हें ढूंढ़ने का काम किया था।

प्रश्न—यह खूब है, जब जरूरत पड़ती थी, डाकू आप जैसी वर्दि
पहन कर पुलिस वाले बन जाते थे, और आप भी उनका रू
धारण करके उन्हें खोजते थे। इस तजुर्बे के बारे में ब्योरे
बताइये।

अतर सिंह—हां जनाब ! फिर हमने भी चलाई। उस रात उनके पास पकड़ के उन्नीस आदमी थे। दोनों ओर से गोली चलने के कारण डाकू तो भाग गए, पर वह पकड़ के उन्नीस आदमी छूट गए।

प्रश्न—जिनकी पकड़ छूटी होगी, उनके तो भरे घर बच गए होंगे ?

अतर सिंह—वह किसी पकड़ का पचास हजार लेने वाले थे, किसी का अस्सी हजार, सब का पैसा बच गया—यहां ग्वालियर में जब वह लोग मिले, मक्खन मुझसे पूछने लगा,"अतरसिंह, कितनी तनखाह गवर्नमेन्ट से मिलती है ? "मैंने बताया, "सरकार छः सौ महीने का देती है।" तो कहने लगा, "छः सौ की खातिर तुम मारे-मारे फिरते थे, हम तुम्हें छः हजार महीने का दे देते अगर तुम उस समय हमारे साथ मिल जाते—"मैं हंसने लगा, मक्खन ने मैंने कहा, "छः हजार तो लोगों को मारने के बदले में मिलता, पाप का रुपया, पर डाकूओं को मारने के बदले में छः सौ मिलता पर पुण्य का है।

प्रश्न—आपका क्या खयाल है, अतर सिंह जी ! डाकूओं ने जो आत्म समर्पण किया है, सचमुच उनके दिलों में कोई तब्दीली हुई है, या थक कर, टूट कर, जवानी का जोश उतार लेने के बाद।

अतर सिंह—असल में पुलिस की सख्ती भी बढ़ गई थी, और ऊपर विनोबा और जयप्रकाश के मेल ने भी उन्हें कुछ बदला।

प्रश्न—अतरसिंह जी ! सुनने में आता है कि डाकुओं की ओर से पुलिस को बंधी हुई रकम पहुंचती थी, इसलिए पुलिस खास खास डाकुओं को कभी नहीं पकड़ती थी। क्या यह ठीक है ?

अतर सिंह—हमने भी ऐसी बहुत सी अफवाहें सुनी हैं, शायद कहीं ऐसा हुआ भी हो, हुआ होगा, पर मैंने अपनी आंखों से ऐसा कुछ नहीं देखा। कराल, शिवपुर, वीरपुर, बड़ोदा थाना, मानपुर, टोंक पालपुर, दसवानी, विजयपुर, इन थानों का तो मुझे पता है, यहां किसी ने इस तरह रुपया नहीं लिया।

प्रश्न—अच्छा, वह तो एक घटना हुई, होली के दिन की। उनके बाद

आपने ऐसा रूप बदल कर किसी डाकू गैंग को पकड़ा या मारा ?

अतर सिंह—हां जी, करार थाने से एस० डी० ओ० पी० आर० के० शुक्ला के आदेश पर जंगल वड़ोदा में मेरा दल पहुंचा। दो दिन, दो रात हम जंगल में रहे। तीसरे दिन डकैत मुवरन सिंह का पता चला। पता लगा कि वह बुखारी के जंगल में है, नदी के किनारे।

प्रश्न—उसका पता कैसे निकाला आपने ?

अतर सिंह—हमें एक चोपीया मिला।

प्रश्न—चोपीया ?

अतर सिंह—गउएं चराने वाला, चरवाहा। हमने उससे पूछा, "हमारे साथी तुमने कहीं देखे हैं, वकरा खरीदने गए थे पता नहीं कहां हैं ?" वह बोला, "भई तुम्हारे दो साथी तो नदी के किनारे पर बैठे हुए हैं, वाकी मुजरी डांग में है।"

प्रश्न—डांक का मतलब ?

अतर सिंह—जंगल।

प्रश्न—तो, आपने पूरे गैंग का पता चला लिया।

अतर सिंह—मैंने अपनी पार्टी को तीन टुकड़ियों में वांट दिया, और हर तरफ से घेरा डाल दिया। मैंने जब अपने चार साथियों के साथ नदी पार की, तो एक झाड़ के नीचे दो डकैत दिखाई दिए। करीब पहुंचे तो फायरिंग शुरू हो गई। उस हमले में रामनाथ जाट और सरदार सिंह, यह दो डाकू मारे गए। एक के पास स्टेन गन थी, दूसरे के पास मार्क थ्री थी।

प्रश्न—मुवरन सिंह वच गया ?

अतर सिंह—इधर गोली चलने से वह लोग चौकन्ने हो गए थे, भाग गए थे, जो दो मारे गए थे, उनकी लाशें हम थाने ले आए।

प्रश्न—अतर सिंह जी, इस तरह के कितने एनकाउन्टर हुए होंगे जिनमें आपने हिस्सा लिया ?

अतर सिंह—जी, सौ के करीब तो जरूर हुए, इसीलिए सरकार की तरफ से मुझे राष्ट्रपति पदक मिला है—मैं रहने वाला तो गांव

टीकर, जिला सतना, पुलिस थाना सिंघपुर का हूं। बारह बरस इन इलाके में हो गए हैं काम करते, मेरे अफसरों ने यहां से जाने नहीं दिया। अब पन्द्रह जून को मेरी पेनशन होने वाली है। श्री हरिवल्लभ जोशी ग्वालियर के डी०आई०जी० थे, अब जो मध्य प्रदेश के आई०जी० हैं, उनका मुझपर बड़ा प्रभाव रहा—वह मुझे मानते भी थे, और बड़े प्यार से एनकाउन्टर के लिए भेजते थे—एक एनकाउन्टर में खुद जोशी साहब भी थे, एम०डी० शर्मा साहब भी, आर० के० शुक्ला साहब भी। थाना गसवानी के गांव शेशराम में छोटे नाथू डकैत का गिरोह उतरा हुआ था। वहां मैंने डी०आई०-जी० और एस० पी० साहब के आदेश से घेरा डलवा दिया। पता लगा गन्ने के खेत में वह सारे दस बारह डकैत छुपे हुए हैं। सवेरे पांच बजे के करीब घेरा डाला। कोई चार घण्टे दोनों ओर से गोली चली। तीन लाशें और एक घायल डाकू मिला। शाम तक दो लाशें और मिलीं। पर छोटा नाथू अभी तक नहीं मिला था। शाम तक घेरा पड़ा रहा। छोटा नाथू कहीं शाम को मिला। उसकी गर्दन में गोली लगी थी, पर अभी वह जिन्दा था। उसकी रायफल बेकार हो चुकी थी। शाम को वह जब गन्ने के खेत से निकला, फिर सामना हुआ और फिर वह हमारी दूसरी गोली से मर गया।

प्रश्न—एस० पी० वर्मा के एनकाउन्टर के समय भी कभी आप उनके साथ रहे हैं?

उत्तर सिंह—थाना वीरपुर के सिलपरी के जंगल में एस० पी० सुरजीत सिंह और श्री रामलाल वर्मा, जो तब डी० एस० पी० थे, की अगवानी में पूनी नदी के पास माधो सिंह और हरविलास डकैत से सामना हुआ था, जिसमें चार "पकड़" छूटी थीं। डकैत कोई भी नहीं मारा गया था, लेकिन 'पकड़' छूट गई थीं। यह अन्तिम एनकाउन्टर था। इसके बाद ही माधोसिंह जे० पी० के पास गया था कि वह आत्मसमर्पण करना चाहता है, शान्ति मिशन

से जाकर मिला था।

प्रश्न—यह तो ठीक है कि पुलिस की सख्ती जब बढ़ गई, डाकू घबरा कर आत्मसमर्पण करने लगे। आजकल क्या हाल है? कितने डाकू अभी भी अपने कारोबार में हैं?

अतर सिंह—सिर्फ एक सुबरन सिंह हैं, १९७२ से कोई पता नहीं है। न तो उसने आत्मसमर्पण किया है, न कहीं से उसकी मौत की खबर मिली है।

प्रश्न—मैंने सुना है कि उसके पास रुपया बहुत था, और वह हमेशा अपने शरीर के साथ रखता था, कपड़ों में लपेटकर। कौन जाने उनके किसी साथी ने ही रुपये की खातिर उसे मार दिया हो?

अतर सिंह—हो सकता है, पर पता नहीं है। वह डाकू बनने के समय अपनी महरिया और दो बच्चों को अपने हाथों से मार कर अकेला होकर गया था। सिर्फ उसकी एक बहन थी, राम बछेड़ी गांव में ब्याही हुई। सुना है, उसे वह कुछ पैसा भेजता रहता था। और तो उसका कोई नहीं था।

प्रश्न—फिर तो पता लगाया जा सकता है। अगर असकी बहन को अब भी कभी-कभार कहीं से पैसा आता है तो इसका मतलब है कि वह जिन्दा है।

अतर सिंह—जी, अब वह इलाका तो जी दूसरे के मातहत है, हमें कुछ पता नहीं। मेरी बदली तो जिला दतिया, तहसील सेंवड़ा में हो गई है।

प्रश्न—यहां सेंवड़ा में १८ फरवरी को हमारे आने से कुछ दिन पहले, सुना है एक डाकू ज्ञान सिंह को पुलिस ने मारा था।

अतर सिंह—जी हां और इससे पहले दिसम्बर की ८ तारीख को जंगल निवरी में हमने चार डाकू मारे थे। बस यही फरार लोग थे, अब जंगलों में कोई डाकू नहीं है। लोग सुख की सांस लेने लगे हैं।

□ □ □

नेपाल

पौराणिक कथा के अनुसार नेपाल की वादी कभी एक झील थी। कहते हैं चीन से मंजूषी नाम का एक वली पीर आया था। जिसने प्यास लगने पर धरती की टोह ली थी, और वहां से पानी निकल आया था। इसी बहते हुए पानी का नाम बागमती है। उसी पीर ने यहां की वादी का एक राजा नियुक्त किया था। वह उसका ही एक शिष्य धरमारकर था। पता नहीं कितना समय बीत गया। फिर इतिहास बताता है कि कांचीपुरम् (दक्षिण भारत) से धरमादत्त नाम का एक राजा फौज लेकर चढ़ आया, और उसने इस वादी को जीत लिया। फिर सम्राट् अशोक इस वादी को देखने आया, जहां उसकी पुत्री चारुमती ने सदा के लिए निवास ग्रहण कर लिया।

५६५ के आसपास राजा अम्सुवर्मन ने अपनी पुत्री का विवाह तिब्बत के राजा के साथ कर दिया। उस राजा ने चीन की एक लड़की से भी विवाह किया। यह दोनों रानियां बौद्ध थीं। इन्होंने ही तिब्बत में बौद्ध मत फैलाया। इन दोनों रानियों को नेपाल में दो तारे कहा जाता है।

पुरातन गोरखा राज्य के सम्बन्ध में पौराणिक कथा है कि इनके पूर्वज उदयपुर के राजकुमार थे, जो मुसलमान राजाओं से भयभीत होकर हिमालय पर्वत की ओर चले गए थे। वहां १७४२ में पृथ्वी नारायण शाह ने नेपाली राज्य के विरुद्ध हथियार उठाए, और १७६८ में वहां का राज्य संभाला, काठमांडू को राजधानी बनाया और सिक्कम तक राज्य की सीमा फैलाकर चौबीसों राज्यों को एक किया।

१७७५ में पृथ्वीनारायण शाह की मृत्यु हो गई। पर उनके उत्तराधिकारी इर्द-गिर्द के क्षेत्रों को जीतते रहे। त्रिविक्रम जीत लिया गया। उनकी फौजें पश्चिम में आगे बढ़ती हुई पंजाब की कांगड़ा घाटी तक पहुंच गईं। पर वहां महाराजा रणजीतसिंह की फौजों ने उन्हें रोक लिया। दूसरी ओर इन फौजों ने तिब्बत पर आक्रमण किया था, जिसके कारण चीन से जंग छिड़ गई, और गोरखा फौजों को पीछे नेपाल की ओर मुड़ना पड़ा। १७८७ में इनका ईस्ट इण्डिया कम्पनी से सीमा के सम्बन्ध में झगड़ा चल रहा था, जिसने १८१४-१६ की जंग का रूप धारण किया। जबर्दस्त मुकाबले के बाद अहद-नामा हुआ, और नेपाल की वह सीमा निश्चित की गई, जो आज है।

नेपाली लोगों के पूर्वागम के सम्बन्ध में अनुमान है कि उत्तर दिशा से मंगोल लोग और दक्षिण की ओर से आर्य आपस में मिले। पहले क़बीले उन्हीं की संतान थे। फिर बाद में जब राजपूत वहां पहुंचे और बसे, उन्होंने उन क़बीलों में ब्याह कर लिए। निचली घाटियों में अधिकांश निवासी ब्राह्मण और क्षत्रिय हैं, जो हिन्दू धर्म को मानते हैं। ऊपर पहाड़ों के पैरों में बिछी हुई वादियों के लोग मंगोल नवंश के हैं। सारे नेपाल में हिन्दू धर्म की अपेक्षा बौद्ध धर्म की प्रधानता है।

अट्ठारहवीं शताब्दी के अन्त तक नेपाल एक छोटी-सी वादी थी जहां चार मुख्य नगर थे—काठमांडू, ललितपत्तन, भादगांव और कीर्तिपुर। भादगांव का असली नाम भगतपुर था, बाद में भगतग्राम हो गया, और फिर वह नाम बिगड़ कर भादगांव हो गया। इसके निवासी नेवार थे। यहां हिन्दू-बौद्ध मिश्रित सभ्यता विकसित हुई। पांचवीं शताब्दी के बाद के इतिहासकार बताते हैं कि संस्कृत धार्मिक भाषा के रूप में व्यवहार में आती थी। बौद्ध मत हिन्दुस्तान में कम होता गया, पर नेपाल में बढ़ता गया। हिन्दुस्तान की पुरातन पांडु-लिपियां आज काठमांडू में सुरक्षित मिलती हैं। वहां का सबसे बड़ा मन्दिर हिन्दुस्तान के प्राचीन मन्दिरों के आधार पर निर्मित जान

पड़ता है। उस प्रकार के मन्दिर आज भी कुल्लू और केरल में हैं। नेवारी लोग कुशल शिल्पी थे। मूर्तिकला, नक्काशी और चित्रकला में निपुण थे। इनकी कला तिब्बत में भी फैली।

नेपाली भाषा को खसकुरा, गोरखाली और पर्वतिया भी कहा जाता है। पर मंगोल क़बीलों की और नेवारों की बोली अलग-अलग है। गोरखा राज से पहले के धार्मिक लेख, संस्कृत, नेवारी और नेपाली में थे। साहित्यिक लेखन उन्नीसवीं शताब्दी में आरम्भ हुआ। जिसके पूर्वार्ध के कवियों ने रामायण और भागवत पुराण से कुछ विषय लेकर कविताएं लिखीं, अधिकांश संस्कृत में। १८६० में पहला छापाखाना खोला गया। नेपाल का पहला अखबार 'गोरखा पत्र' १९०१ में शुरू हुआ। नेपाली भाषा का पहला व्याकरण १९१२ में प्रकाशित हुआ। नए साहित्य की उम्र १९२० से गिनी जाती है। उन्हीं दिनों दो भाइयों बालकृष्ण और पुष्कर शमशेर (१९०२–६०) के प्रयत्न से 'गोरखा भाषा प्रकाशिनी समिति' बनी। इनके समकालीन कवियों में लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा (१९०८–६०) और सिद्धिचरण, और कहानीकारों में भीमनिधि तिवारी उल्लेखनीय हैं। आधुनिक लेखकों ने जिन्दगी के नए विषयों पर लिखने के लिए संस्कृत को त्याग दिया है।

भले ही नेवारी काठमांडू घाटी के अधिकांश निवासियों की भाषा थी, और १७६९ तक अदालती भाषा भी रही, पर राज्य की ओर से इसमें साहित्य सृजन की मनाही थी। फिर १९४० में सेन्सरशिप कम हुई, और इस भाषा में भी साहित्य रचना होने लगी। इस भाषा का पहला लोकप्रिय लेखक है—चित्तधर हृदय।

□ □ □

एक नेवारी लेखक से भेंट

अमृता—धूसवां साहब ! मैंने नेपाल में भी इतना नेपाल नहीं देखा था, जितना आपसे मिल कर दिल्ली में देखा है। आपके मुंह से नेपाल को सुनना चाहती हूं।

धूसवां—१७६९ तक तो सिर्फ काठमांडू की वादी नेपाल होता था। आज तक भी अगर गांवों के लोग काठमांडू जा रहे होंगे तो कहेंगे—नेपाल जा रहे हैं। कई छोटे-छोटे राज्य होते थे—पश्चिम की ओर ही बाईस राज्य थे। काठमांडू में ही तीन राज्य। राजा पृथ्वीनारायण ने सब राज्यों को मिलाया था, और नेपाल का विस्तार किया था।

अमृता—हर राज्य से जूझना पड़ा होगा ?

धूसवां—हां, हर राज्य से। काठमांडू के मल्ल राजा के साथ तो घोर युद्ध हुआ था। दो बार हारना भी पड़ा, पर अन्त में जीत हुई थी। काठमांडू का एक कस्बा कीर्तिपुर छोटी-सी पहाड़ी पर बना हुआ है, यहां राजा पृथ्वीनारायण दो बार हारे थे। एक बात बताऊं मल्ल राजा नेवार होते थे। मैं भी नेवार हूं, इसलिए मैं इस पहाड़ी कस्बे को बड़े चाव से देखने गया था। कीर्तिपुर अन्त में हारा था, पर इसकी बहादुरी की अनेक कथायें हैं। इन लड़ाइयों में राजा पृथ्वीनारायण का मुख्तार मारा गया, और छोटा भाई तीर लगने से अन्धा हो गया, जिससे राजा बड़े क्रोध में आ गया, और उसने सारे कस्बे के लोगों की नाकें काटने का आदेश दे दिया। वहां खेतों में एक समाधि है, जहां [illegible] नाकें दबाई गई थीं। इसलिए कस्बे का

पड़ता है। उस प्रकार के मन्दिर आज भी कुल्लू और केरल में हैं। नेवारी लोग कुशल शिल्पी थे। मूर्तिकला, नक्काशी और चित्रकला में निपुण थे। इनकी कला तिब्बत में भी फैली।

नेपाली भाषा को खसकुरा, गोरखाली और पर्वतिया भी कहा जाता है। पर मंगोल क़बीलों की और नेवारों की बोली अलग-अलग है। गोरखा राज से पहले के धार्मिक लेख, संस्कृत, नेवारी और नेपाली में थे। साहित्यिक लेखन उन्नीसवीं शताब्दी में आरम्भ हुआ। जिसके पूर्वार्ध के कवियों ने रामायण और भागवत पुराण से कुछ विषय लेकर कविताएं लिखीं, अधिकांश संस्कृत में। १८६० में पहला छापाखाना खोला गया। नेपाल का पहला अखबार 'गोरखा पत्र' १६०१ में शुरू हुआ। नेपाली भाषा का पहला व्याकरण १६१२ में प्रकाशित हुआ। नए साहित्य की उम्र १६२० से गिनी जाती है। उन्हीं दिनों दो भाइयों बालकृष्ण और पुष्कर शमशेर (१६०२–६०) के प्रयत्न से 'गोरखा भाषा प्रकाशिनी समिति' बनी। इनके समकालीन कवियों में लक्ष्मीप्रसाद देवकोटा (१६०८–६०) और सिद्धिचरण, और कहानीकारों में भीमनिधि तिवारी उल्लेखनीय हैं। आधुनिक लेखकों ने जिन्दगी के नए विषयों पर लिखने के लिए संस्कृत को [illegible] दिया है।

भले ही नेवारी काठमांडू वादी के अधिकांश निवासियों की भाषा थी, और १७६६ तक अदालती भाषा भी रही, पर राज्य की ओर से इसमें साहित्य सृजन की मनाही थी। फिर १६४० में सेन्सरशिप कम हुई, और इस भाषा में भी साहित्य रचना होने लगी। इस भाषा का पहला लोकप्रिय लेखक है—चित्तधर हृदय।

□ □ □

एक नेवारी लेखक से भेंट

अमृता—धूसवां साहब ! मैंने नेपाल में भी इतना नेपाल नहीं देखा था, जितना आपसे मिल कर दिल्ली में देखा है। आपके मुंह से नेपाल को सुनना चाहती हूं।

धूसवां—१७६९ तक तो सिर्फ काठमांडू की वादी नेपाल होता था। आज तक भी अगर गांवों के लोग काठमांडू जा रहे होंगे तो कहेंगे—नेपाल जा रहे हैं। कई छोटे-छोटे राज्य होते थे—पश्चिम की ओर ही बाईस राज्य थे। काठमांडू में ही तीन राज्य। राजा पृथ्वीनारायण ने सब राज्यों को मिलाया था, और नेपाल का विस्तार किया था।

अमृता—हर राज्य से जूझना पड़ा होगा ?

धूसवां—हां, हर राज्य से। काठमांडू के मल्ल राजा के साथ तो घोर युद्ध हुआ था। दो बार हारना भी पड़ा, पर अन्त में जीत हुई थी। काठमांडू का एक कस्बा कीर्तिपुर छोटी-सी पहाड़ी पर बसा हुआ है, यहां राजा पृथ्वीनारायण दो बार हारे थे। एक बात बताऊं मल्ल राजा नेवार होते थे। मैं भी नेवार हूं, इसलिए मैं इस पहाड़ी कस्बे को बड़े चाव से देखने गया था। कीर्तिपुर अन्त में हारा था, पर इसकी बहादुरी की अनेक कथायें हैं। इन लड़ाइयों में राजा पृथ्वीनारायण का मुखतार मारा गया, और छोटा भाई तीर लगने से अन्धा हो गया, जिससे राजा बड़े क्रोध में आ गया, और उसने सारे कस्बे के लोगों की नाकें काटने का आदेश दे दिया। वहां खेतों में एक समाधि है, जहां वह काटी हुई नाकें दबाई गई थीं। इसलिए कस्बे का नाम 'नकटा देश' पड़

गया।

अमृता—पर यह नाम चिह्नात्मक भी हो सकता है, केवल हारने का चिह्न, क्यों नहीं?

धूसवां—शायद यही हो, पर इस कस्बे की बहादुरी में औरतों का नाम आज तक कायम है। हर औरत ने, जो हथियार उसके हाथ आया, उठा लिया। आज तक कीर्तिपुर की औरतें मर्दों की ही तरह रोष में आ जाती हैं, जैसे पिछले दिनों यूनीवर्सिटी के लिए जमीन चाहिए थी, वह खेतों में से ही लेनी थी, तो उसके विरोध में औरतें पुलिस से लड़ पड़ी थीं। कीर्तिपुर के जिन लोगों ने, पहले आक्रमणकारी राजा के साथ मिलकर उसकी जीत में मदद की थी, उन्हें कीर्तिपुर के योद्धाओं ने बहिष्कृत कर दिया। उन्हें अपने गांव से निकाल कर उनका एक अलग गांव बसा दिया—"बाहरी गांव।"

अमृता—यह 'बाहरी गांव' अब भी है?

धूसवां—हां, बिल्कुल है। अब बाकी लोग इस गांव के लोगों से मिलते हैं, व्यवहार रखते हैं, पर वह नाम अभी भी उसी तरह है।

अमृता—कीर्तिपुर के लोग अब नेपाली बोलते हैं या नेवारी?

धूसवां—कामकाजी लोग नेपाली जानते हैं, पर आपस में नेवारी बोलते हैं। औरतें सिर्फ नेवारी बोलती हैं।

अमृता—नेवारी साहित्य के बारे में कुछ बताइये?

धूसवां—नेवारी डिक्शनरी डेनमार्क के हेन्स जारगेनसन ने बनाई थी। नेवारी अब देवनागरी में लिखी जाती है, पहले रंजना लिपि में लिखी जाती थी।

अमृता—धूसवां साहब! आप भी तो ज्यादा नेवारी में लिखते हैं?

धूसवां—ज्यादा करके नेवारी में, कभी-कभी नेपाली में। यही दोनों भाषायें मुख्य हैं। वैसे मैथिली और मगर भाषा भी है, पर साहित्यिक रूप में उनका विकास नहीं हुआ।

अमृता—मैं आपके एक बहुत बड़े कवि से मिली थी, देवकोटा जी से,

जब वह दिल्ली आये थे। फिर कुछ दिन बाद ही उनका देहान्त हो गया।

सूनवां—हम देवकोटा को महाकवि देवकोटा कहते हैं। मैं उन्हें महा-पुरुष कहता हूं। वे निर्धन परिवार में जन्मे थे, पर जब कालिज में लेक्चरर नियुक्त हुए तो सारा वेतन लोगों में बांट दिया करते थे···उन्होंने हर लेखक को प्यार किया—नये, और छोटे लेखक को भी, पर उन्हें हर लेखक ने धोखा दिया···बहुत बड़े व्यक्तित्व के मालिक थे, इसलिए बाहरी देशों से उन्हें सीधे व्यक्तिगत बुलावे आ जाया करते थे, पर जहां तक अकादमियों का प्रश्न है, उनसे बहुत छोटे लेखक अकादमियों के मालिक थे, इसलिए अपनी ईर्ष्या के कारण वह कभी भी देवकोटा का नाम नहीं चुनते थे। अन्तिम समय उनकी दशा यह थी—मैं उनसे मिलने गया, मैं उनसे जीवन में केवल एक बार मिला हूं—पूछने लगे, 'सिगरेट है?' मैं सिगरेट नहीं पीता, इसलिए मेरे पास सिगरेट नहीं थी। वह पिये हुए सिगरेटों के टोटे चुन-चुन कर पी रहे थे। नये सिगरेट खरीदने के लिए उनके पास पैसे नहीं थे। और उस समय भी वह नेवारी साहित्य का अंग्रेजी में अनुवाद कर रहे थे।

अमृता—देवकोटा जैसे कुछ लोग दुनिया को केवल देने के लिए आते हैं—दुनिया से कुछ भी लेने के लिए नहीं।

सूनवां—हमारी नेवारी के एक लेखक हैं—चित्तधर हृदय—अब ६९ साल के हैं, उन्होंने उस समय नेवारी में लिखा जिस समय नेवारी में लिखना, राणा पीरियड के समय, अपराध माना जाता था।

अमृता—अपराध?

सूनवां—नेवारी में लिखने वाले को हथकड़ी-बेड़ी डाल कर जेल में डाल दिया जाता था। राणा लोग चाहते थे कि नेवारी का पुनर्जन्म न हो। उस समय को हम 'जेलयुग' कहते हैं। पर चित्त-धर हृदय ने सदा नेवारी में लिखा। जेल भुगता, पर नेवारी में लिखा। बहुत समय कलकत्ते में रहे, सुसराल कुछ अमीर थी,

इसलिए कभी जमीन बेच कर, कभी पत्नी के गहने बेच कर, किताबें छपवाते थे। किताबें बेचते भी थे, लिखते भी थे। उनकी एक कृति है 'अनाथ खत'—इस खत से उनका तात्पर्य स्वयं से भी है, भाषा से भी, देश से भी है।

अमृता—यह खत उन्होंने बड़े दर्द से लिखा होगा?

धूसवां—बड़े दर्द से लिखते हैं—"मैं इस आन्तरिक अमीरी का क्या करूं, जिसे कोई अपना कहने वाला नहीं।" स्वयं के अतिरिक्त उनका यह दर्द अपनी भाषा के लिए भी है और अपनी धरती के लिए भी। अपनी संस्कृति के लिए मर-मिटने वाले लेखक हैं। एक बार आज के नाविलों का सैक्स-अपील के बारे में बात चली। हमारा खयाल था कि आज के नाविल उन्हें इसलिए पसन्द नहीं हैं क्योंकि उनमें सैक्स-अपील होती है, पर उस दिन की बहस में उनका महान रूप देखने को मिला। कहने लगे, "आप लोग मुझे गलत समझते हैं, मैं सैक्स-अपील से नफरत नहीं करता, केवल पश्चिमी प्रभाव के नीचे आये आपके वर्णन को पसन्द नहीं करता। आप लोग छोटी स्कर्ट और खुले ब्लाउज की बात करते हैं, यह नकल है, बाहरी प्रभाव है। आप लोग जामे की खुली तनियों की बात क्यों नहीं करते? आप लोग गांव की लड़कियों की पिंडलियों पर गोदे हुए फूलों की बात क्यों नहीं करते? यह लड़कियां जब लाल किनारी वाली धोतियां कैंची की तरह बांधती हैं—जिससे टांगें आगे से ढक जाती हैं, पर पीछे से पिंडलियां दिखाई देती रहती हैं, तो क्या उसमें सैक्स-अपील नहीं है? सैक्स-अपील की बात कीजिये, लेकिन अपनी संस्कृति में से।"

अमृता—धूसवां साहब! नेपाल के मन्दिरों में अनेक दीवारों पर ऐसे चित्र हैं—हमारे खजुराहो के चित्रों की तरह—जिनमें स्त्री और पुरुष के मेल के अनेक इराटिक दृश्य हैं।

धूसवां—नेपाल में माना जाता है कि तूफान आएगा तो मन्दिरों में नहीं जाएगा, वह ऐसे दृश्य देख कर शरमा जाएगा।

अमृता—फिर तो हर घर की दीवार पर ऐसी ही रक्षा का कुछ प्रबन्ध होना चाहिए था ?

धूसवां—ईश्वर का घर बच गया तो सब कुछ बच गया।

अमृता—अच्छा, यह बताइये, धूसवां जी ! आपके यहां के लोग खास तौर पर बहादुर माने जाते हैं, जैसे गोरखा पलटन।

धूसवां—हम हमेशा दूसरों के लिए लड़े, कभी अपने देश के लिए नहीं लड़े। मैं एक बार रूस में था—विश्व शान्ति की बात चल रही थी। किसी ने कहा, "दुनिया में जंग हो या अमन, नेपाल को क्या, नेपाल में कभी लड़ाई नहीं लड़ी गई।" उस समय मैं तड़प उठा था। मैंने कहा था, "दोनों महायुद्धों के बाद हमारे नेपाल का क्या हाल हुआ था, किसी ने नहीं देखा। सारे खेत उजड़े हुए पड़े थे, सारे देश में या बूढ़े दिखाई देते थे या औरतें, आचारहीन बनी हुई। ऐसे हम पराई जंग को भुगतते हैं।"

अमृता—जंग की पूरी भयानकता को।

धूसवां—गांवों के बचे-खुचे लोग शहरों में नौकरी करने आते हैं, उनमें से बहुतों को भिखारी बनना पड़ता है।

अमृता—जैसे अभी हमारे अखबारों में भी भयानक खबर आई थी कि नेपाल से बहुत लड़कियां भगाकर हिन्दुस्तान लाई जाती हैं, और बेची जाती हैं।

धूसवां—यह वह अपने सुपनों के हाथों मार खाती हैं, बिचारी लड़कियां ! —वैसे वह संस्कृति से इतनी बंधी हुई हैं कि 'मिस नेपाल' के चुनाव के लिए जब ऐलान किया गया तो कोई लड़की इसके लिए तैयार नहीं हुई।

अमृता—अच्छा, धूसवां साहब ! कुछ अपने नाविलों की बात कीजिये आपने अब तक कितने नाविल लिखे हैं ?

धूसवां—छह छप चुके हैं, नेवारी में। एक का तर्जुमा नेपाली में हुआ है, एक का अंग्रेजी में।

अमृता—आजकल कोई नया नाविल लिख रहे हैं ?

घूसवां—अभी खतम किया है, पर इस बार मैंने सीधे हिन्दी में लिखा है।

अमृता—इस बार किसी भारतीय लड़की पर या पुरानी स्मृति के आधार पर किसी नेपाली लड़की पर ?

घूसवां—भारतीय लड़की पर। एक राज़ की बात बताऊं ? पहले मैं जब भी लिखता था, अपने पात्र को दिशा देता था, एक निर्देशक की भांति। पर इस बार मैं अपने नाविल का निर्देशक नहीं, पात्र हूं, उसमें बह गया हूं, उसमें डूबा हुआ।

अमृता—तब तो भारतीय लड़की को इसका गर्व होना चाहिए। अच्छा, मैं दुआ करती हूं, हर तीन बरस बाद आपकी किसी नए देश बदली हो जाया करे, और आप हर तीन बरस बाद।

घूसवां—हाए—हाए—ऐसा न कहिये। मैं इसी नाविल से थक गया हूं। इस बार मेरी मानसिक परेशानी का अन्त ही नहीं था। अगर हर तीन बरस बाद ऐसी परेशानी देखनी पड़ी।

□ □ □

एक और मुलाकात

अमृता—सूनयां साहब, लेखक की सबसे बड़ी टक्कर स्थापित व्यवस्था के साथ होती है। यह व्यवस्था चाहे राजनीतिक हो चाहे सामाजिक। इस तरह जैसे राज्य के भीतर एक और राज्य हो वैसे ही घर—बार, बीवी-बच्चे भी स्थापित व्यवस्था होते हैं। आपके विचार में क्या लेखक की स्वतन्त्रता इस स्थापित व्यवस्था के साथ भी कभी टकराती है ?

सूनयां—उलटे कई बार यह स्थापित व्यवस्था सहायक होती है। वह इस तरह कि इस पहलू की सीधी अनुभूति होती है मन पर, तन पर, जिसकी गांठें उंगलियों की पकड़ में आ जाती हैं और यह सब कुछ उपन्यास, कहानी बन जाता है—यथार्थवादी साहित्य।

अ०—तो मतलब यह कि लेखक पत्नी को गले से लगते हुए भी एक चैतन्य लेखक होता है—पति कम और लेखक अधिक।

मैनिन्दर—उस वक्त लेखक रचना के भीतर भी होता है और बाहर भी।

सू०—पर यही स्थापित व्यवस्था उस अनुभूति को लिखने में बाधा भी बन जाती है। यूं तो मैं सब कुछ लिख लेता हूं, फिर भी सोचता हूं अगर मैं अकेला होता, बिलकुल अकेला, मेरा बीवी-बच्चों से कोई वास्ता न होता, तो मैं बहुत कुछ लिखता, अब से कहीं अधिक ! और, एक बात और, मैं अब से कहीं अधिक ईमानदार लेखक होता। चाहे अब भी मैं सामाजिक मान्यताओं से तगड़ी टक्कर ले लेता हूं, पर कई बातें ऐसी होती हैं जिन्हें, सोचता हूं, अगर ज्यों का त्यों लिख दूं तो मेरे उस कारो-

वार पर हरफ आ जाएगा जिससे मैं रोटी कमा कर खाता हूं, और रोटी की यह जरूरत सिर्फ मेरी अकेले की नहीं। अकेले की होती तो कोई बात नहीं थी। पर यह मेरे बीवी-बच्चों की रोटी है। तो इस तरह यह स्थापित व्यवस्था लेखक के रास्ते में आ जाती है।

दे०—अमृता जी, लेखक होने के नाते घरेलू बन्धनों के बारे में, और सामाजिक बन्धनों के बारे में आपके अनुभव कैसे हैं!

अ०—शरीफ आदमी, यह तुम मुझसे पूछते हो? धूसवां साहब पूछते तो और बात थी। तुमने तो मुझे बरसों से पल-पल देखा है। बन्धन कुछ बना ही नहीं, न घरेलू, न सामाजिक। सब (बन्धनों) के धागे मैंने अपने हाथों खोल दिए।

धू०—मैं एक बात कहना चाहता हूं। लेखक की पत्नी को हमेशा यह याद दिलवाना पड़ता है कि वह किसी लेखक की पत्नी है। यह बात वह बार-बार भूल जाती है और वह लेखक मानने से पहले अपना पति मानती है। उसे वास्तव में लेखक पहले मानना चाहिए, पति बाद में। मेरे मन में भी सब धागे तोड़ देने का उबाल आता है, पर फिर यह उबाल एक दुविधा बन जाता है, और इस दुविधा में धीरे-धीरे लेखनी शिथिल हो जाती है, तोड़ देने और बनाए रखने के बीच की दशा। कई बार सोचता हूं कि जो नारी प्रेरणा बनती है वही पत्नी बन कर शिथिलता क्यों बन जाती है। कई बार पत्नी से कहता हूं तू मेरी प्रेमिका होती तो अच्छा होता, पत्नी न बनती।

अ०—धूसवां साहब, मुहब्बत पिंजरा नहीं परवाज होती है, उड़ान होती है। क्या पत्नी में पत्नी और प्रेमिका एक साथ नहीं हो सकतीं?

धू०—नहीं हो सकतीं यह कैसे कह सकते हैं। मैं सिर्फ यह कह सकता हूं नहीं हुई। मैं लिखता हूं तो वह इसलिए खुश नहीं होती कि मैं लिख रहा हूं, वह खुश होती है इसलिए कि इससे कुछ अलग पैसा मिल जाएगा। कभी-कभी लेखक के तौर पर बहुत बेचैन हो जाता

हूं तो वह मुझे मेरे उस दोस्त के पास जाने के लिए कहती है जिसके साथ बातें करके मैं अपना मन हल्का कर लूं। आज नेपाल की जगह दिल्ली में हूं तो ऐसे समय वह कह देती है, जाओ, एक घण्टा अमृता से मिल आओ।

०—मानो कह रही हो, अपना लेखक वहां छोड़ आओ और मेरा पति वापस ले आओ। वास्तव में बात यह है कि अच्छी पत्नी—अच्छी से मेरा मतलब नेक से नहीं समझदार से है—अच्छी प्रेमिका हो सकती है, पर अच्छी प्रेमिका कभी अच्छी पत्नी नहीं बन सकती।

०—मैं तो कहता हूं कि पत्नी कभी प्रेमिका नहीं बन सकती। बच्चे हो जाएं तो वह बच्चों की मां बनकर और सख्त होजाती है।

०—यानी प्रेमिका के स्थान से और दूर चली जाती है।

०—अमृता, तुम क्यों नहीं बोलतीं ?

०—क्योंकि मैं आप दोनों से सहमत नहीं। यह सभी रूप औरत के अधूरे रूप हैं। उसकी पूर्णता इसमें हैं कि वह जिस मर्द की प्रेमिका हो उसी की पत्नी हो और उसीके बच्चों की मां हो।

०—यह हो ही नहीं सकता। यह आदर्श मात्र है।

०—हर यथार्थ धरती पर पांव रखने से पहले कल्पना होता है। कल्पना यथार्थ का दूसरा नाम है—सिर्फ उससे एक कदम दूर। धूमकेतु साहब, इस एक कदम का फासला इन्सान को तय करना होगा।

०—घरेलू बन्धनों को मैं एक सिम्फनी की तरह सुनता हूं। मेरे रचना कार्य के लिए यह घर का शोर जरूरी है। यह पृष्ठभूमि में बजने वाले संगीत की तरह होता है। पत्नी के शिकवे और शिकायतें सब मुझे एक संगीत के स्वर लगते हैं।

०—देविन्दर, इस समय तुम लेखक से ज्यादा म्यूजिक कम्पोजर लग रहे हो, शायद इसलिए कि संगीत की बात कर रहे हो। अगर तुम लेखक की शब्दावली में बात करो तो शायद बच्चों की

आवाज़ें तुम्हें अर्धविराम, पूर्णविराम, विस्मयचिह्न लगें और पन्नों के उलाहने ब्रैकिट या प्रश्न सूचक चिह्न या होनेवाले बच्चे की बात फुटनोट।

धू०—सचमुच जब हमें लिखना होता है तब सब कुछ होने के बावजूद लिख लेते हैं, हर बन्धन के बावजूद। विवाह के बन्धन ने भी हमें न जाने और कितने बन्धनों से बचाया है। और यह भी सोचता हूं कि अगर कोई बन्धन न होता, कोई दर्द न होता, तो फिर हम कुछ भी न लिख पाते। दर्द के बिना क्या लिख सकते हैं। यह बन्धन हमारे लिखने की सामग्री बनते हैं और उन्हें तोड़ने की प्रेरणा भी।

अ०—तो बन्धन और स्वतन्त्रता के दुमुही सांप को काटने दो और उसके ज़हर के नशे में लिखते रहो।

□ □ □

एक नेपाली घर का धुर अन्दर का कोना

मृता—धूसवां साहब ! मैंने नेपाल कुछ अपनी आंखों से देखा है, कुछ आप से मिलकर आपकी आंखों की राह से। आज कुछ नेपाल आपकी पत्नी की आंखों से देखना चाहती हूं। आपका दृष्टिकोण एक लेखक है, मेरी तरह, पर आपकी बीवी का दृष्टिकोण 'लोक दृष्टिकोण' है। आप भी हमारी बातों में भाग लें, पर मैं वसुन्धरा जी के 'औरत—एक दृष्टिकोण' से जो कुछ जानना चाहती हूं उसमें जो नेपाल की एक औरत के पक्ष से होगा। वह तो होगा ही, पर उसमें एक लेखक की पत्नी के तौर पर जो होगा, आप कृपा करके उसमें दखल न दीजियेगा।

सवां—मुझे अगर दखल देना होता, तो मैं इन्हें साथ ही न लाता। आज सवेरे इन्होंने मुझे चुनौती दी थी, "मुहब्बत, रोमांस, और सैक्स के बारे में आप मेरे सामने अपनी ज़िदगी की बातें अमृता जी को बता सकते हैं?"—तो मैं इनकी यह चुनौती स्वीकार करके इन्हें अपने साथ ले आया हूं। आप जानती हैं—मैं सिर्फ खाविन्द नहीं हूं, एक लेखक भी हूं, और एक लेखक की अपनी ईमानदारी होती है, मैं उसी ईमानदारी से अपने बारे में सब कुछ कह सकता हूं। मैंने रास्ते में भी इनसे कहा था, "मैं तुम्हारी बातों में दखल नहीं दूंगा, तुम्हें चाहे बताते हुए कुछ डर भी लगे", और इन्होंने जवाब दिया था, "मुझे काहे का भय? मैंने ज़िन्दगी में कोई गलती नहीं की। भय उसे लगे जिसने कुछ उल्टा-सीधा किया

हो।"

अमृता—अच्छा वसुन्धरा जी, नेपाल की बातें करने से पहले, नेपाल के इस लेखक धूसवां की बातें लें। जो कुछ इन्होंने उल्टा-सीधा किया है, उसकी फेहरिस्त बना लें।

वसुन्धरा—इतनी लम्बी फेहरिस्त है, पता नहीं लगता कहां से शुरू करूं।

अमृता—शुरू से ही शुरू कर दीजिए। जब से इनसे वास्ता पड़ा। आपने अपने ब्याह का फ़ैसला खुद किया था या आपके बड़े बुजुर्गों ने?

वसुन्धरा—यह मेरी मां की इच्छा थी। अकेली बेटी थी, मेरे पिता बौद्ध थे, उनकी इच्छा थी कि मैं बौद्ध भिक्षुणी बनूं, देश में धर्म का प्रचार करूं। वह मेरे लिए गुम्बा बनाना चाहते थे।

अमृता—गुम्बा क्या होता है वसुन्धरा जी?

वसुन्धरा—गुम्बा तिब्बती लफ्ज़ है, इसका मतलब हैं—मन्दिर।

अमृता—और उस समय आपका अपना क्या ख़याल था?

वसुन्धरा—मैं तब बारह बरस की थी। हमारे घर की छत पर फूलों के छज्जे थे, वहां सूरज के चिह्न के रूप में एक पत्थर रखा हुआ था, जिसकी हम पूजा किया करते थे। उसी पत्थर को छूकर मैंने प्रण किया था कि मैं कभी ब्याह नहीं करूंगी।

अमृता—फिर धूसवां साहब को देखा वह प्रण त्याग दिया!

धूसवां—मैं तब अमृता जी, धूसवां नहीं था। मैं अभी बनारस में पढ़ने वाला एक लड़का था, गोविन्द।

वसुन्धरा—कई घरों से मेरे रिश्ते आते थे। न मुझे दिलचस्पी थी, न मेरे पिता को। पर जब इनके घर से मांग आई, मेरी जन्मपत्री मांगी गई, तो न जाने क्यों मेरे मन में अचानक ब्याह की इच्छा

जगहों से कोशिशें हो रही थीं—मेरी जाति मानंधर में ही एक घराना बहुत ऊंचा माना जाता था, उधर से भी कोशिश हो रही थी। मां कहती थी कि मेरी पढ़ाई खत्म होने तक वह लड़की कंवारी नहीं रहेगी। एक बार छुट्टियों में मैं वहां गया, तो हैरान रह गया कि मेरी सब मांगें मानी जा रही हैं, मुझे नए कपड़े सिलवा दिए गए, नया जूता खरीद दिया गया, और बहाने से मुझे लड़की वालों के निकट, पड़ोस वाले घर भेज दिया गया। जैसे लड़के को किसी बहाने से लड़की दिखाते हैं, उसी तरह मुझे किसी बहाने से लड़की को दिखाया गया।

वसुन्धरा—आगे मैं बताती हूं। बात यह थी कि मेरे घर में लड़ाई मची हुई थी। भाई कह रहे थे कि मैं पढ़ूं, पर पिता मुझे किसी स्कूल में भेजने के लिए तैयार नहीं थे। वह धार्मिक शिक्षा देने के लिए घर में मुझे तिब्बती भाषा और बौद्ध साहित्य पढ़ने के लिए कह रहे थे। भाई समझा रहे थे कि मैं ब्याह न करूं, क्योंकि लड़का बहुत पढ़ा-लिखा है, मैं पढ़ी हुई नहीं हूं, इसलिए ब्याह के बाद वह लड़का मुझे अनपढ़ कहकर मेरी ओर से लापरवाह हो जाएगा और सास मुझे चौके की दासी बना लेगी। सो भाई ने घर में स्कूल खोलकर मुझे और पास-पड़ोस की लगभग पचास लड़कियों को इकट्ठा करके पढ़ाना शुरू कर दिया। भाई के डर से मैंने ब्याह से इन्कार कर दिया था, पर मन से इन्कार नहीं किया था। उस दिन जब यह हमारे पड़ोस में आए तो मैंने इन्हें देखा। वह पड़ोस का घर मेरे चाचा का था। उस घर की बहू इनकी सगी बुआ थी। दोनों घरों में पूजा का मन्दिर साझे-दारी में था। मैं पूजा करने गई, तो उस घर में से हंसी-ठट्ठे की आवाज आ रही थी। मेरे मन ने हामी भरी आज 'वह' आया

है। यह खिड़की में बैठे हुए थे। मैंने नीचे से ऊपर की ओर देखा, मुझे यह आदमी बहुत सुन्दर लगा। फिर मैंने चाची की बहू के पूछने पर ब्याह के लिए नांह कर दी, पर मन में मुझे इस आदमी की लगन लग गई, और मैंने एक महीने भगवान बुद्ध का व्रत रखा। इस व्रत को हमारी भाषा में 'गूंला' कहते हैं। व्रत के महीने में दिन में सिर्फ एक बार अन्न खाते हैं। और फिर जो इच्छा हो वह पूरी हो जाती है। मैंने व्रत रक्खा और भगवान बुद्ध से मनोरथ मांगा कि मेरा इनसे ब्याह हो जाए। मेरी इच्छा पूर्ण हुई। मेरा इनसे ब्याह हुआ। जिस आदमी को मैंने इतनी तपस्या से पाया हो—और वह दूसरी औरत को चाहे, तो क्या मुझे दुख नहीं होगा ?

अमृता—मैंने तो पहले ही कहा था कि नेपाल की बातें करने से पहले, नेपाल के इस लेखक की सब कृतियों की एक सूची बना लें।

वसुन्धरा—पहली पीड़ा सुहाग रात को हुई थी। इन्होंने पहली रात को मुझे किसी लड़की की चिट्ठी दिखाई और—उसके भेजे हुए दो रुमाल मुझको दिए। बड़ी लम्बी चिट्ठी थी—इन्हें लिखी हुई, पुराने प्यार की। भला यह क्या चीज थी मुझे पहली रात देने की ?

अमृता—शायद इसलिए कि गैरों से जो पुराना हिसाब-किताब था, खत्म हो जाए, और आगे से आपके साथ नया बेबाक हिसाब शुरू हो।

वसुन्धरा—पर हिसाब कहां खतम हुआ। बाद में भी कई लड़कियां इनकी जिन्दगी में आईं। वैसे न जाने क्यों—मुझे हर बार यह बता देते, और चाहते कि मैं भी उस लड़की की सहेली बन जाऊं। हर लड़की पहले तो मेरी सहेली बन जाती, फिर मुझे छिटक कर परे कर देती। जो भी बातें मैंने उससे की होतीं, वह

जब इन्हें बताकर, खुद इनके निकट हो जाती, और मुझे परे धक्का दे देती। ऐसा कोई तेरह बार हुआ।

धूसर्वा—तेरह बार नहीं, बारह बार।

यमुना—चलो तेरहवां गुनाह अनकिया, और बारह गुनाह कबूल।

वसुन्धरा—ये मेरे दिल के बारह घाव हैं। बहुत पीड़ा हुई, बहुत तकलीफ़……बारहवां तो अभी भी चल रहा है, न जाने कब खतम होगा……मैंने कई बार पोखरी में डूब कर मर जाना चाहा, यह जब किसी लड़की से लड़ कर घर आते, मुझ बेगुनाह को झिड़कियां देते। पर एक बार मैंने जाकर एक ज्योतिषी को इनकी जन्म पत्री दिखाई, उसने कहा कि इनकी जिन्दगी में बहुत लड़कियां आएँगी, पर यह आदमी तुम्हें कभी नहीं छोड़ेगा। सो मैंने सन्तोष कर लिया। पर एक बड़े दुख की बात बताऊँ—मेरे घर में जब पहले पुत्र का जन्म हुआ, मैं बहुत बीमार थी, इसलिए अपने पीहर थी। यह छुट्टी में बनारस से घर आए हुए थे। उन दिनों इनकी जो गर्ल फ्रेन्ड थी, उसे इनकी मां ने अपने घर बुला लिया……मुझे बुलाया था, पर मैं बहुत बीमार थी, जाना चाहती थी जा नहीं सकती थी, सो सास ने गुस्से में आकर उस लड़की को बुला लिया……मैंने तड़प कर अपने खून से इन्हें खत लिखा था कि जाने से पहले मुझ से मिलकर जाएं।

यमुना—धूसर्वा साहब, आप मिलने गए या नहीं ?

धूसर्वा—जरूर गया था। आपको इस सारी दास्तान की पृष्ठभूमि बताऊँ—बात यह थी कि जब तक ब्याह नहीं हुआ था, मेरी मां इस लड़की से मेरा ब्याह करने के लिए उत्सुक थी। पर जैसे ही ब्याह होगया, मेरी मां तन गई। उधर बदले में इसके माता पिता भी तन गए। हम दोनों एक दूसरे को बहुत चाहने लगे

थे—पर हम दोनों के माता पिता···।

सुन्धरा—उन दिनों यह मुझे बनारस से हर दूसरे दिन चिट्ठी लिखा करते थे। पर इनकी माँ इनका दूसरा ब्याह करना चाहती थीं। हम लोगों में एक रस्म होती है कि जब बहू घर आती है तो नास लाल रंग की ठों से उसके पैर धोती है···।

मृता—यह ठों क्या होता है ?

सुन्धरा—जिसे अंग्रेजी में बीयर कहते हैं। ठों नेवारी में कहते हैं, और नेपाली में जांरो। भला बताइये, जिसके इस तरह पैर धोए हों, उनका बाद में इस तरह कैसे निरादर किया जा सकता है···।

अमृता—मेरा खयाल है, वसुन्धरा जी ! कि यह आपकी सास साहिबा के मन का एक बदला था। आपको हासिल करने के लिए इन्हें कई बार झुकना पड़ा, सो उसी अपने निरादर का बदला लेने के लिए···।

धूसर्वा—मेरे मन में भी कुछ रिऐक्शन थी, यह मायके जाती थीं तो इसके माता-पिता इन्हें आने नहीं देते थे। इन्हें मिलकर मेरे मन में प्यार की भूख जाग उठी थी, यह सुन्दर तो थीं ही, जब मायके से न आतीं तो मैं यह समझता था कि बड़े घर की बेटी हैं, मुझ से अकड़ के रहती हैं। मैं असल में चाहता था—यह मेरी बीवी रहें, और इसके अलावा और कोई लड़की मेरी दोस्त रहे।

अमृता—धूसर्वा साहब ! आप एक लेखक हैं, साधारण आदमी नहीं, आप मानते हैं कि जो अधिकार मर्द को है, वही औरत को। अगर आप अपने लिए इस तरह सोचते थे, तो क्या बदले में वही अधिकार इनको दे सकते थे ? क्या आप कबूल कर सकते थे कि आप इनके पति रहें, और और कोई इनका एक दोस्त भी हो ?

वूसवां—यह वात मैंने कभी सोची ही नहीं।

अमृता—मानो औरत से यह वात किसी तरह जुड़ती ही न हो, इसका सम्वन्ध सिर्फ मर्द से हो।

वूसवां—ठहरिए। ज़रा सोचने दीजिए। आपने मेरी बीवी के बारे में पूछा है न? बीवी तो बीवी है, मैं अपनी दोस्त लड़कियों के बारे में भी नहीं सोच सकता था कि उनका सम्बन्ध किसी और से हो। पर एक वात आपको और वता दूं कि मेरी दोस्त लड़कियों में से कभी किसी की मजाक नहीं हुई कि कोई मेरी बीवी के ख़िलाफ कुछ कह सके। मैं जिन दिनों कहीं अफेयर कर रहा होता हूं—उन दिनों भी अपनी बीवी के लिए मेरा प्यार कम नहीं होता है। दुनिया की कोई लड़की इसकी जगह नहीं ले सकती। पहले कभी जब मेरी किसी लड़की से दोस्ती टूटती थी, मैं सोचता था कि मेरी बीवी ने इसे तुड़वा दिया। पर अब लम्बे तजुर्बे के वाद मैं जान गया हूं कि उस दोस्ती को टूटना होता ही था। हर लड़की सोचती थी कि मैं शादीशुदा हूं—यह सम्बन्ध अन्त में कहीं नहीं पहुंचेगा, इसलिए वह ख़ुद ही इस सम्बन्ध को तोड़ देती थी। आख़िर मैं यह भी सोचने लगा कि अच्छा हुआ, यह वसुन्धरा मेरी बीवी है, नहीं तो उन लड़कियों में से किसी के फंदे में फंसा जाता।

अमृता—पर, वूसवां साहब! आपको वार-वार किसी अफेयर की जरूरत क्यों पड़ती है।

वूसवां—मेरे अन्दर एक जंगली शेर है, चाहता हूं कोई मुझे जंजीर में जकड़ ले। मैं लिखना चाहता हूं—तो प्रतीक्षा करता हूं कोई मु[illegible] हुक्म दे, "तुम जरूर लिखो, अभी लिखो" और मैं उसका हु[illegible] मानकर लिखना शुरू कर दूं। मैं जब यहां, अमृता जी! तुम्हें [illegible] इमरोज़ को देखता हूं, तो देखता हूं कि तुम्हारी भटकन ख़त्म [illegible]

गई है, तब मैं भी सोचता हूं—मेरी भटकन भी इसी तरह खत्म हो जाए, मैं भी सब कुछ घर में ही खोज लूं—पर।

अमृता—यह 'पर' क्या है, यूसवां साहब ?

यूसवां—यही पता नहीं चलता। मेरे ब्याह को पच्चीस बरस हो गए हैं, पर अब भी कभी बीबी से कह देता हूं—जाओ, तुम मायके चली जाओ, "मैं नये सिरे से तुमसे इश्क करूंगा, और फिर तुम्हारे साथ ब्याह करूंगा।

वसुन्धरा—मैं कई बार कहती हूं—तुम किसी और लड़की से ब्याह कर लो। मैं तुम्हारी बीबी नहीं, तुम्हारी महबूब बनना चाहती हूं।

अमृता—आपके नेपाल में एक रिवाज है—कि कुंआरी लड़की पहले विष्णु से ब्याह करती है।

यूसवां—विष्णु से नहीं, बेल फल से। कहने को तो विष्णु से ही कहा जाता है, पर ब्याह की रस्म बेलफल के साथ होती है। बेलफल शिव का प्रतीक है। वहां माघ के महीने में स्कन्द पुराण पढ़ा जाता है—आप जानती हैं शिव को कोई अपनी लड़की नहीं देता था, सो विष्णु ने अपने लिए लड़की मांग कर उसे आगे शिव को दे दिया।

अमृता—तो, वसुन्धरा जी ! आपका ब्याह भी पहले बेल फल के साथ हुआ था ?

वसुन्धरा—हां, हुआ था, जब मैं आठ बरस की थी।

अमृता—तो, आप विष्णु को अपना पति मान लीजिए, और यूसवां साहब को अपना महबूब !

वसुन्धरा—पर उसी बात में कसर रह गई थी न। मैं उन दिनों आठ बरस की थी, पर मां के पेट का बरस गिन कर मुझे नौ बरस की कहा गया। क्योंकि, कहते हैं, कि आठवें बरस में जो विवाह होता

है, वह सफल नहीं होता। पर मैं असल में तो आठ बरस की ही थी—पर आप एक बात बताइये अमृता जी! आप मुझसे बड़ी भी हैं, लेखिका भी हैं, मुझे यह बताइये कि मेरे पति को लड़कियां क्यों चाहती हैं? कुंआरी भी ब्याहता भी?

अमृता—वसुन्धरा जी! लड़कियों को तो शोहरत से एक कशिश होती है, शोहरत से भी, और रोमांटिक स्वभाव से भी। और यह दोनों चीजें लेखक के नाम के साथ जुड़ी हुई होती हैं। यह आपके पति के साथ ही इस तरह नहीं होता, हर लेखक के साथ होता है, और हर लेखक की बीवी को आपकी तरह सोचना पड़ता है। आपको उर्दू के मशहूर शायर फैज की बात सुनाऊं। पिछले दिनों जब हिन्दुस्तान आए थे, मेरे घर भी आए, मैंने उनके बीवी बच्चों का हाल पूछा तो हंस कर कहने लगे, 'मेरी बेटी के घर बेटी पैदा हुई है, कम्बख्त ने मेरी मार्किट खराब कर दी—"अब मैं नाना बन गया हूं, भला कौन लड़की अब मुझसे इश्क़ करेगी?

[व]सुन्धरा—अब मैं इनके बारहवें इश्क़ का क्या करूं? मैं तो कहती हूं, अगर यह उसके साथ खुश हैं, तो खुश रहें, पर मुझसे क्यों लड़ते हैं?

[ध]ूसवां—मुझे तो, बस,! तुम कचहरी में ले आई हो, मैं किसी और बात पर भी खीझूं तो नाम उस लड़की का लग जाता है। वह हर वक्त मेरे सिर पर सवार नहीं रहती।

अमृता—बात यह है, धूसवां साहब! वसुन्धरा जी के सारे माथे को बिन्दी ने हथियाया हुआ है, पर आपके माथे में किसी और का ख्याल भी है, चाहे आपके कहने के अनुसार हर समय नहीं रहता।

वसुन्धरा—जी करता है—एक महीने के लिए कहीं चली जाऊं। अलोप हो जाऊं। पहले इनकी एक लड़की के हाथों तंग आकर नेपाल से हिन्दुस्तान तीर्थ यात्रा के लिए आ गई थी। लौटकर

गई तो उनकी दोस्त लड़की मुझसे कहने लगी—"तुम कहीं मत जाया करो ! तुम चली गई तो बाद में तुम्हारे पति मुझसे इस तरह बर्ताव करते थे कि जैसे मैं उनसे गुनाह करवा रही हूं।" समझ में नहीं आता, कहीं चली जाऊं तो यह मुझे याद करते हैं, पास रहूं तो लड़ते हैं।

भूसवां—अब फिर तुम्हारा जी घूमने को कर रहा है, ऐसा लगता है। तुम ऐसे ही इस नई लड़की का बहाना करती हो। जाओ, जहां तुम्हारी मर्जी हो, घूम आओ। मैं घर पर बैठा तुम्हारा इन्तजार करता रहूंगा।

अमृता—आज नेपाल की ऊंची-ऊंची पहाड़ियों के मन्दिर देखने की इच्छा थी—वह तो नहीं देखे, पर, वसुन्धरा जी ? आपसे बातें करके नेपाल के एक घर का धुर अन्दर का कोना देख लिया। यह शायद उससे भी कीमती है—क्योंकि किसी गैर देश के आदमी को यह देखना नसीब नहीं होता। अच्छा, वसुन्धरा जी ! आखिर में अपने देश का कोई प्यारा-सा गीत सुना दीजिए।

वसुन्धरा—नेपाली का जो गीत मुझे अच्छा लगता है वह एक भजन है—'हे मूरख मन ! तू कितना भटक रहा है, सुख की लालसा में तू दुख पा रहा है।'

अमृता—यह तो ऐसे लगता है—जैसे आज वसुन्धरा जी घर की छत छत पर खड़ी हुई हों जहां फूलों की छज्जों में सूर्य देवता का चिह्न वह पत्थर पड़ा हो, जहां खड़े होकर बारह वरस की वसुन्धरा ने प्रण किया था कि वह भिक्षुणी बनेगी, ब्याह नहीं करेगी, और अब ब्याह के लम्बे सफ़र के बाद वह उसी देवता को अपने तोड़े हुए प्रण का हश्र बता रही हो।

वसुन्धरा—क्या करूं—आज की वसुन्धरा कुछ भी नहीं कर सकती।

परे किसी राह पर जाने लगे, तो आगे वही तेरह बरस की वसुन्धरा आकर खड़ी हो जाती है—जिसने पूरे एक महीने भगवान बुद्ध का व्रत रख कर यह पति मांगा था।

अमृता—वसुन्धरा का अर्थ है धरती ! अम्बर कुछ भी करे धरती कहां जाएगी ? वह अम्बर क़हर और रहम दोनों पी लेगी।

धूसवां—धू का अर्थ होता है धूल। मैं धूल मिट्टी का फूल हूं—इसी धरती का, इसी वसुन्धरा का।

वसुन्धरा—मैंने एक ज्योतिषी को अपनी जन्मपत्री दिखाई थी, उसने बताया था कि मैं पिछले जन्म में वीणा बजाया करती थी, शायद उन दिनों मैं कला और सुन्दरता के मद में चूर थी—इन्हें अपनी बेपरवाही से तंग किया था, अब शायद उसी जन्म का बदला ले रहे हैं—कौन जाने—कौन जाने।

अमृता—आप तो धूसवां साहब ! विष्णु और शिव के रक़ीब हैं। हर नेवार लड़की की तरह वसुन्धरा जी ने भी पहले बेल फल के साथ ब्याह किया—फिर आपके साथ। सो, आपका दर्जा इनके लिए विष्णु और शिव के बराबर हुआ जिसने आपको यह दर्जा दिया, आप इनकी ओर से उदासीन नहीं हो सकते।

□ □ □

०उमंग	(समीर)	०लहू के धब्बे	(गुप्तदूत)
०नादानी	"	खूनी सपने	"
०एक भूल	(लोकदर्शी)	०चीखती रातें	"
०निर्मोही	"	सुनहरी लाशें	"
०प्यासा सागर	"	०पांचवीं गोली	"
०काजल	"	०मौत बेचने वाले	"
०घायल	"	यह लाश किसकी है	"
०वासना के घेरे	"	०न्याय के हत्यारे	(इं० गिरीश)
विवेक	"	०मूर्ति का रहस्य	"
०अभिलाषा	"	०अन्धेरे का भूत	"
०कोमल	"	०मैं अपराधी नहीं	"
०झूठे सपने	"	**अन्य रोचक उपन्यास**	
०दो किनारे	"	०२७ डाउन	(रमेश बक्षी)
हारजीत	"	०उदास आंखें	(कुसुम बंसल)
०मंजिल	"	०नींव का पत्थर	"
दीवाना	"	०भैरवी	(शिवानी)
सफर	गुरुदत्त	०आग की लकीर	(अमृता प्रीतम)
?दीन दुनिया	"	०उनकी कहानी	"
?अन्धेर नगरी	"	अतीत की परछाइयां	"
?आकाश पाताल	"	०बादलों के पीछे	(रमेश भारती)
?परम्परा	"	०चाकर गाथा	(विमल मित्र)
?गगन के पार	"	०खुशबू	(राज दीप)
?नारी नटेश्वर	"	०घुन लगी बस्तियां	(जयवंत दलवी)
?सीमाबद्ध	"	०कलंक	(शिवकुमार जोशी)
जासूसी उपन्यास		०असमर्थ की यात्रा	(नि०गोपीचंद)
०खून के बदले में	(गुप्तदूत)	उलटे कदम	(रवीन्द्र थापड़)
०हत्या और हत्यारे	"	चकोरी	(विजयकुमार गुप्त)
०मुर्दों का षड्यन्त्र	"	बीच का समय	(रामदरश मिश्र)
०खून की परछाइयां	"	उड़े हुए रंग	(सर्वेश्वर सक्सेना)
०चोरी की लाश	"	नीलिमा	(आदिल रशीद)
०औरत खतरा और मौत	"		(रेवतीशरन शर्मा)
०पिस्तौल का शिकार	"	०कुछ नहीं कहते	(मुसाफिर)
०तीसरा खूनी	"	०आहुति	"